।। अष्टभुजा विन्ध्यवासिनीदेव्यै नमः ।।

पूर्ण दुर्गासप्तशती

(सिद्ध प्राचीन सम्पूर्ण ७०० श्लोकीय)

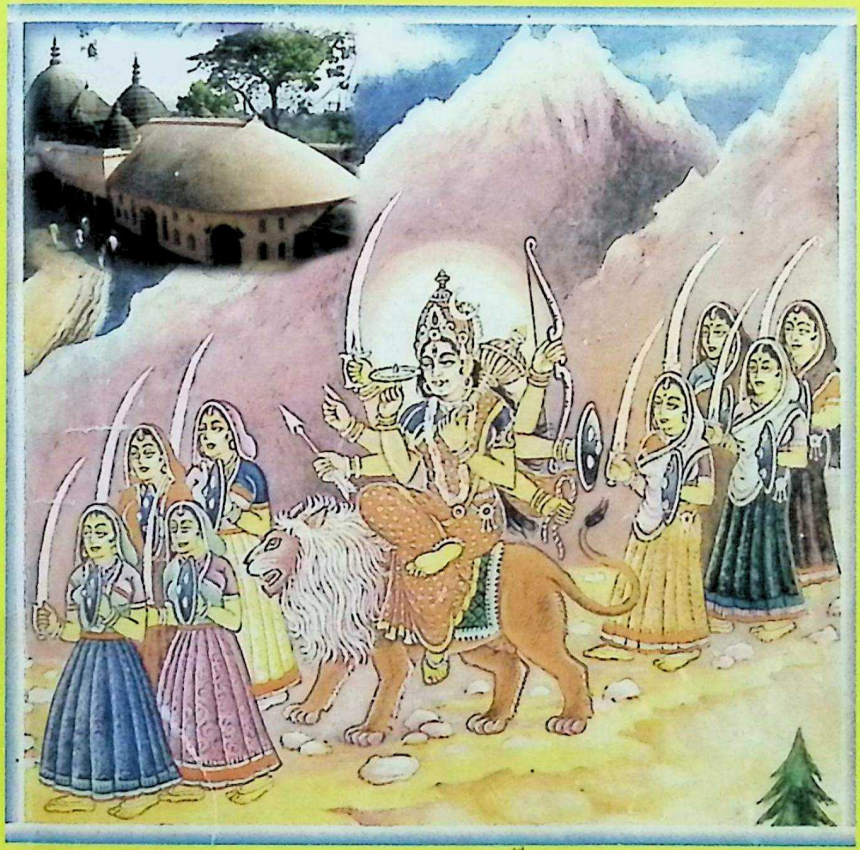

विद्युद्-दाम-सम-प्रभां मृग-पति-स्कन्ध-स्थितां भीषणाम् ।
कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्-हस्ताभिरासेविताम् ।।
हस्तैश्चक्र-गदाऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम् ।
विभ्राणामनलात्मिकां शशि-धरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

।। श्री सदगुरवे नमः ।।

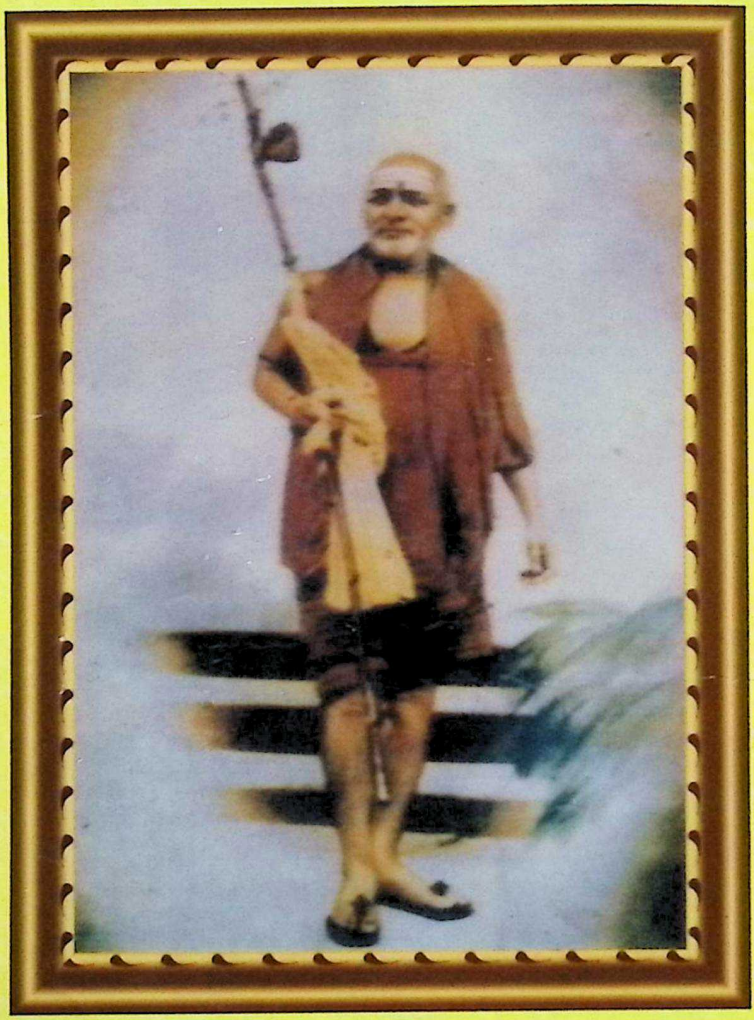

ब्रह्मलीन
धर्म सम्राट स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्दातीतं गगनसदृशं तत्वमत्स्यादिलक्षम् ।
एकंनित्यं विमल मचलं सर्वधिक्साक्षि भूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं त्वांनमामी ।।

।। अष्टभुजा विन्ध्यवासिनीदेब्यै नमः ।।

पूर्ण दुर्गासप्तशती

(सिद्ध प्राचीन सम्पूर्ण ७०० श्लोकीय)

विद्युद्-दाम-सम-प्रभां मृग-पति-स्कन्ध-स्थितां भीषणाम् ।
कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्-हस्ताभिरासेवितम् ।।
हस्तैश्चक्र-गदाऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम् ।
विभ्राणामनलात्मिकां शशि-धरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

संकलनकर्ता :

पं. इन्द्रप्रसाद अधिकारी

प्रकाशक :
डा. रामअवतार शर्मा
श्री बज्रांग आयुर्वेद भवन
आठगांव
गुवाहाटी

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन है ।

संस्करण : वि. सं. २०७१

सहयोग रु २५०/-

मुद्रक :
जय भारत प्रेस
सन्तोष भवन
३४८, ए. टी. रोड
गुवाहाटी-७८१००९
दूरभाष : २५१४६६६, २७३००४९

।। श्री दुर्गासप्तसती ।।

(सिद्ध प्राचीन सम्पूर्ण ७०० श्लोकीय)

एकैवशक्ति परमेश्वरस्य
भिन्ना चतुर्भि व्यवहार काले ।
भोगे भवानि विभवे च लक्ष्मी
युद्धे च दुर्गा प्रलये च काली ।।

।। देवा ऊचुः ।।

नमः शिवायै कल्याण्यै, शान्त्यै पुष्पै नमो नमः ।
भगवत्यै नमो देव्यै, रुद्राण्यै सततं नमः ।।

काल–रात्र्यै तथाऽम्बायै, इन्द्राण्यै ते नमो नमः ।
सिद्धयै बुद्धयै तथा वृद्धयै, वैष्णाव्यै ते नमो नमः ।।

पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या, न ज्ञाता पृथिवीति च ।
अन्तः स्थिता प्रेक्षति च, वन्दे तामीश्वरीं पराम् ।।

कल्याणं कुरु मे मातः । त्राहि नः शत्रु–तापितान् ।
जहि पापं हयारिं त्वं, तेजसा स्वेन मोहितम् ।।

खलं मायाविनं घोरं, स्त्री–वश्यं वर–दर्पितम् ।
दुःखदं सर्व–देवानां, नाना–रुप–धरं शठम् ।।

त्वमेका सर्व – देवानां; शरणं भक्त – वत्सले !
पीडितान् दानवेनाद्य, त्राहि देवि ! नमोऽस्तु ते ।।

॥ ॐ नमश्चण्डकायै ॥

विनम्र निवेदन

श्री दुर्गासप्तशती के सात सौ स्तोत्र (मंत्र) ब्रह्मा की शक्ति भगवती चण्डी के मन्दिर की सात सौ सीढ़ियाँ है जिन्हें पार करके साधक मातृ धाम में पहुंचता है। प्रस्तुत पुस्तक परम पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा प्रसाद से ही सम्पूर्ण ७०० श्लोक सहित प्राप्त हुयी है। इस पुस्तक में अन्य **श्रीदुर्गा शप्तसती** पुस्तक की तरह उवाच और अर्द्ध मंत्र को मंत्र की संख्या में नही लिया गया है। श्री दुर्गासप्तशती मुख्यतः तीन चरित्रों में विभाजित है।

१. प्रथम चरित्र में मधु कैटभ–वध का प्रसंग, २. मध्यम चरित्र में महिषासुर वध एवं, ३. उत्तम चरित्र में शुंभ–निशुंभ वध का प्रसंग है। ये तीनों चरित्र तीन प्रकार के कर्म संस्कारों या वासनाओं जैसे १. संचित कर्म, २. प्रारब्धिक कर्म और, ३. भविष्यत कर्म अथवा तीन गुणो १. सत्वगुण, २. रजोगुण, एवं ३. तमोगुण अथवा तीन ग्रंथी १. ब्रह्म ग्रंथी, २. विष्णु ग्रंथी एवं ३. रुद्र ग्रंथी के प्रति न केवल हमारा ध्यान आकर्षित करते है, अपितु एक सुन्दर कथा के माध्यम से इनके मूल में हमारा विचलित चित्त को ध्यान में प्रवेश भी करा देते है और जैसे ही मनुष्य उक्त तीनों मूल में पहुंचता है वैसे ही माता करुणामयी पराम्बा भगवती के सान्निध्य में पहुँच जाता है। वास्तव में श्रीदुर्गासप्तशती के सम्पूर्ण ७०० श्लोकों के द्वारा ही साधक सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में शापोद्धार देव्याः कवचम्, अर्गलास्तोत्रम्, कीलकम् स्तोत्र न्यास सहित नवार्ण मंत्र भी दिया गया है। प्रथम चरित्र के पूर्व सिद्ध महाकाली सूक्त और मध्यम चरित्र के पूर्व में सिद्ध महालक्ष्मी सूक्त और उत्तम चरित्र के पूर्व सिद्ध महासरस्वती सूक्त भी दिया गया है।

इस पुस्तक में परम पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन श्री श्री १०८ स्वामी करपात्रजी महाराज जी द्वारा तीनों रहस्य और अनेको कामनाओं की पूर्ति हेतु सिद्ध सम्पूट मंत्र भी दिये गये है। जो कि प्राचीन मूल मार्कण्डेय उत्तर पुराण से लिया गया है। मार्कण्डेय उत्तर पुराण आज सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है। इन सारे ७०० श्लोक (मंत्र) का उपदेश हस्तलिखित पाण्डुलिपी द्वारा ही सन् १९६५ में पुण्य भूमि वाराणशी के सारनाथ में ब्रह्मलीन परमपुज्य गुरुदेव द्वारा प्राप्त हुआ।

श्री दुर्गासप्तशती (सम्पूर्ण ७०० श्लोकीय) के द्वारा अनेकों भक्तों की मनोकामना पूर्ण हुयी है। इसके एक पाठ मात्र से प्रचलित श्रीदुर्गासप्तशती के दश पाठ के बराबर फल एवं शीघ्र सिद्धियों की प्राप्ति होती है। यथा, "शीघ्र सिद्धीप्रदापाठं प्रशस्तम् सर्वकर्मशु"। इस पुस्तक में (प्रथम चरित्र) ब्रह्मा द्वारा की गयी स्तुतियों में विशेष सुन्दर वसंततिलका: छन्द में २१ श्लोक सहित (उवाच और अर्द्ध श्लोक की जगह पर १२७ श्लोक अधिक है। इसी सम्पूर्ण ७०० श्लोकीय श्री दुर्गासप्तसती ग्रंथ के द्वारा पुत्रकामेष्टि आदि अनेक गुप्त अनुष्ठान के प्रयोग द्वारा दुर्लभ फल की प्राप्ति होती है। इसकी सम्पूर्ण सिद्धि के लिये शक्ति पीठ का अत्यधिक महत्व है।

समग्र शक्ति पीठ पराम्बा भगवती का दिव्य धाम है यथा सर्वोच्च शक्तिपीठाधीश्वरी पराम्बा भगवती माँ कामाख्या का दिव्य धाम नीलाचल पर्वत गुवाहाटी (असम) विन्ध्याचाल स्थित विन्ध्यावासिनी और वाराणसी स्थित अन्नपूर्णा व अन्यान्य सभी शक्ति पीठ। इन सभी में भी साधक अत्यल्प समय मे ही पराम्बा कामाख्या के धाम से शीघ्र ही सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। श्री देवी भागवत महापुराण में कामरूप तीर्थ में पराम्बा भगवती कामाख्या तथा वहां प्रतिष्ठित दस महाविद्याओं का सविस्तार वर्णन है। इस महापीठ के वामभाग में भगवती तारा, दक्षिण भाग में भुवनेश्वरी, अग्निकोण में

षोडशीविद्या, नैर्ऋत्य कोण में स्वयं भैरवी, वायव्यकोण में छिन्नमस्ता, पृष्ठभाग में बगलामुखी ईशानकोण में सुन्दरी विद्या, ऊर्ध्वभाग में मातंगनायिका तथा दक्षिण भाग में धूमावती विद्या प्रतिष्ठित है। नीचे के भाग में भष्माचलस्वरुप स्वयं भगवान शंकर विराजमान है। पितामह ब्रह्मा तथा भगवान विष्णु और जो अन्य प्रमुख देवता है, वे सभी शक्ति से समन्वित होकर भगवती कामाख्या के लोक दुर्लभ शक्तिपीठ में निरंतर निवास करते हैं ।

श्रीदुर्गासप्तशती अध्याय २ में जब देवताओं की शक्ति से प्रादुर्भाव हुयी माता को देखकर मुनियों एवं देवताओं ने स्तुति की जैसे अध्याय २ श्लोक ३५ तुष्टुबुर्मुनयश्चैव भक्तिनम्रात्ममूर्तयः .... । ये मुनियों द्वारा की गयी स्तुति भी इसमें समाहित की गयी है। मैने दुर्लभ गुरु प्रसाद को पुनः संकलन करके शाक्त भक्त, साधक एवं विद्वान महानुभावों के समक्ष परोसने का प्रयास किया है जिसका लाभ सभी जगदम्बा की कृपा द्वारा श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उठा सकें। यद्यपि त्रुटि न हो इसका ध्यान रखा गया है फिर भी प्रमादवश या अन्य कोई कारण से अशुद्धि अथवा भूल रह गई हो तो क्षमा करते हुए सुझाव सहित सूचित अवश्य करें जिससे पुनर्मुद्रण में सुधार किया जा सके ।

पं. इन्द्र प्रसाद अधिकारी
दमक नगरपालिका वार्ड नं. १३
मनोकामनाटोल, इन्द्र चौक
जिला : झापा, पूर्व नेपाल
दूरभाष : ००९७७२३५८२५६२
९७०७६-९०१३५ (गुवाहाटी)

॥ श्री ॥

Sri Umakanta Deva Sharma, Shastri (AES)
Tarka-Vyakarana Tirtha

Retd. Prof. K. K. Handique Govt. Sanskrit College
Bakul Nagar, Bakul Path, Jalukbari, Guwahati - 14

Chief Advisor : Sadou Asom Devadamodar Sangha
President : Kamrup District Brahman Samaj
Working President : Asom Sanskrita Mahasabha
Kamrup, Assam
Mobile : 99571-81875

अभिमतम्

जगज्जननीमाद्यशक्तिं महामायां हृदि निधाय पण्डित श्रीमाता इन्द्र प्रसादाधिकारिणा सङ्कलितं देवी महात्म्यप्रकाशक स्तोत्रं यत् श्री दुर्गा सप्तशतीत्यभिधया सनातनीय समाजे सुप्रसिद्धमस्तीत्येतद् विषयमधिकृत्य मया यत् सामान्यमनुभूयते तदत्र निवेद्यते ।

अस्माकं सनातनीय समाजे दुर्गा सप्तशती स्तोत्र पाठो विशेष कार्य्य व्यावस्थायां देव्याः पूजन पूर्व्वक होम-होमांगादि कर्म्मणा करणीयेति व्यावस्था वर्त्तते ।

विशेषतः श्रीश्री दुर्गापूजांगतया श्रीश्री चण्डी पाठो नूनं बाहुल्येन प्रचलितो वर्तते ।

अस्य पाठस्यामोघफलं तत्त्वज्ञेन सत् साधकेन शुद्धान्तःकरणेन स्वीकृत्य सामाजिका अनुप्राणिताः ।

पं. इन्द्र प्रसादेन विशुद्ध उत्तरमार्कण्डेय पुराणेन धृत वचनमभ्युगम्य वस्तुतः सप्तशती संख्यायाः याथार्थं प्रतिपाद्यते ।

अस्य महानुभवस्य प्रचेष्टा नूनमादरणीया प्रशंसनीया चेत्यत्र न सन्देहः। सम्पूर्ण शुद्धरुपेण पूजन पद्धत्या चेदं प्रष्ठुतम्, मया पठितं सातिशयमानन्दं चानुभूतम्। अनेन लोका उपकृता भविष्यन्ति।

जगज्जनन्याः कृपापरवशेनाधिकारिणा श्रीमता इन्द्र प्रसादेन प्रचलित सप्तशतीसंख्यासु पूर्ण ७०० श्लोकीय सप्तशती संकलितः उत्तरमार्कण्डेय पुराणतः स्तुति विषयक अनेकानेक श्लोकेन सप्तशत्याः पूर्णमानितम् ।

पं. अधिकारिणो दीर्घायुषा नैरुज्यं जीवनं लिखन्याः च जाह्नवीगति रवाधिततया चलतु इति शम् ।

अध्यापक श्रीउमाकान्त देव शर्म–शास्त्रि
तर्क–व्याकरण तीर्थ विद्यारत्नस्य

॥ श्री ॥

॥ शुभ कामना ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्रादिक समस्त देवताओं तथा ऋषि महर्षियो द्वारा पूजित भगवति दुर्गा का ध्यान व उपासना करके मनुष्य सांसारिक चतुर्विध पुरुषार्थ व सुखों का उपभोग करते हुए अन्त में निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करता है। श्रीदुर्गासप्तशती (सम्पूर्ण ७०० श्लोकिय) पराम्बा भगवती माँ दुर्गा की उपासना का प्रमुख श्रीग्रंथ है। प्रस्तुत पुस्तक सम्पूर्ण ७०० श्लोकिय हस्त लिखित पाण्डुलिपि द्विजश्रेष्ठ पण्डित श्री ईन्द्रप्रसाद अधिकारीजी ने अपने गुरुवर्य सनातन धर्म स्तंभ, धर्मसम्राट ब्रह्मलीन स्वामी करपात्रीजी महाराज से वाराणशी अन्तर्गत सारनाथ में सन् १९६५ में प्राप्त की थी। उनके द्वारा गुरुकृपा प्रसाद से प्राप्त सम्पूर्ण ७०० श्लोकों को "बहुजन हिताय" के शुभ संकल्प के साथ यह अभूतपुर्व श्रीदुर्गासप्तशती का संकलन करके प्रकाशन किया गया है। इसी ग्रंथ से श्रद्धेय पण्डितजी द्वारा किये गये अनेक सकाम अनुष्ठान आदि अनेक गुप्त अनुष्ठान द्वारा अनेक भक्तों को शत प्रतिशत लाभ मिला है।

श्रीदुर्गासप्तशती (सम्पूर्ण ७०० श्लोकियो में कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक, रात्रि सूक्त, महाकाली सूक्त, महालक्ष्मी सूक्त, महासरस्वती सूक्त और १३ अध्याय के बाद देवी सूक्त एवं ३ रहस्य समेत सम्पूर्ण २४ अंग है। साथ में पाठकों की सुलभता हेतु विशेष श्लोको के पहले (श्लोक के अन्त में) स्टार (*) चिह्न भी दिया गया है। कालिका पुराण तथा देवी भागवत महापुराण में ५१ सिद्ध पीठों में कामरूप को सर्वोत्तम कहा गया

है। यथा, " तेषु श्रेष्ठतमः पीठः कामरूपो महामते" । (देवी पुराण १२/३०) "योनिपीठः कामगिरौ कामाख्या यत्र देवता" । सर्वोच्चशक्तिपीठाधीश्वरी माँ कामाख्या के पावन धरा धाम पर अनादिकाल से जितने भी सन्त सिद्ध हुये हैं, सभी यहाँ से हि सिद्धत्व को प्राप्त हुए हैं। गुवाहाटी प्रवास के समय यथासंभव नित्यप्रति माँ कामाख्या धाम में श्रद्धेय पण्डितजी प्रायः पदयात्रा से पराम्बा भगवती के दर्शनार्थ जाते रहते है।

करुणामयी वात्सल्यमयी पराम्बा भगवती की विधिवत आराधना भाव–विभोर स्तुति से किया गया अनुष्ठान निश्चित रूप से सद्यः फलदायी होता ही है। लोक कल्याण हेतु यत्नपूर्वक ७०० श्लोकिय "श्रीदुर्गासप्तशती" का लोकार्पण करके विप्रप्रवर ने स्तुत्य कार्य किया है जिसके लिये पराम्बा भगवती के साधक एवं भक्त सदैव आपके आभारी रहेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अधिकाधिक विद्वतजन इस पुस्तक से पराम्बा भगवती की कृपा प्राप्तकर सर्वाधिक लाभान्वित होंगे। यह पुस्तक समस्त शुभ कामनाओं के पूर्ण (कामनाकल्पवृक्षवत) कर पराम्बा के भक्तो को मनवांछित फल प्राप्ति करायेगी।

।। "तन्मे मनः शिव संकल्पमऽस्तु" ।।

श्री बज्रांग आयुर्वेद भवन
गुवाहाटी
मो. : 94350 47458

डा० राम अवतार शर्मा

शापोद्धार एवं उत्कीलन

जो लोग श्री दुर्गा सप्तशती का विशेष अनुष्ठान, यज्ञ आदि करना चाहते हैं, उन्हें सप्तशती के अनुष्ठान के पूर्व शापोद्धार एवं उत्कीलन करना चाहिए । यथा –

विनियोग – ॐ अस्य श्रीचण्डिकाया ब्रह्मा–वशिष्ठ–विश्वामित्र–शाप–विमोचन–मन्त्रस्य वशिष्ठ–नारद–सम्वाद–सामवेदाधिपति–ब्रह्माण ऋषयः, सर्वैश्वर्य–कारिणी श्रीदुर्गा देवता, चरित–त्रयं बीजं, ह्रीं शक्तिः, त्रिगुणात्म–स्वरुप–चण्डिका–शाप–विमुक्तौ मम सङ्कल्पित–कार्य–सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि–न्यास–वशिष्ठ–नारद–सम्वाद–सामवेदाधिपति–ब्रह्माण–ऋषिभ्यो नमः सिरसि, सर्वैश्वर्य–कारिणी–श्रीदुर्गा–देवतायै नमः हृदि, चरित–त्रय–बीजाय नमः लिङ्गे, ह्रीं–शक्तये नमः नाभौ, त्रिगुणात्म–स्वरुप–चण्डिका–शाप–विमुक्तौ मम सङ्कल्पित–कार्य–सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

ॐ ह्रीं रीं रेतः – स्वरूपिण्यै मधु–कैटभ–मर्दिन्यै ब्रह्मा–वशिष्ठ–विश्वामित्र–शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ श्रीं बुद्धि–स्वरूपिण्यै महिषासुर–सैन्य–नाशिन्यै ब्रह्मा–वशिष्ठ–विश्वामित्र–शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ रं रक्त–स्वरूपिण्यै महिषासुर–मर्दिन्यै ब्रह्मा–वशिष्ठ–विश्वामित्र–शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ क्षुं क्षुधा–स्वरूपिण्यै देव–वन्दितायै ब्रह्मा–वशिष्ठ–विश्वामित्र–शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ छां छाया–स्वरूपिण्यै दूत–सम्वादिन्यै ब्रह्मा–वशिष्ठ–विश्वामित्र–शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ शं शक्ति–स्वरूपिण्यै धूम्र–लोचन–घातिन्यै ब्रह्मा–वशिष्ठ–विश्वामित्र–शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ तृं तृषा-स्वरूपिण्यै चण्ड-मुण्ड-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ क्षां शान्ति-स्वरूपिण्यै रक्त-बीज-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ जां जाति-स्वरूपिण्यै निशुम्भ-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ लं लज्जा-स्वरूपिण्यै शुम्भवधकारी ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ शां शान्ति स्वरूपिण्यै देव स्तुत्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापद् विमुक्ता भव ।

ॐ श्रं श्रद्धा-स्वरूपिण्यै सकल-फल-दात्र्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ कां कान्ति-स्वरूपिण्यै राज-वर प्रदायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ मां मातृ-स्वरूपिण्यै अनर्गल-महिम-सहितायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ ह्रीं श्री दुं दुर्गायै सं सर्वैश्वर्य-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिवायै अभेद्य-कवच-रूपिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ क्रीं काल्यै कालि ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेद-स्वरुपिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-स्वरूपिण्यै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गा-देव्यै नमः ।

उत्कीलन

सप्तशती के अनुष्ठान के पूर्व २१ बार निम्न मन्त्र का जप करे-

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं सप्तशती चण्डिके ! उत्कीलनं कुरु-कुरु स्वाहा ।

सिद्ध दुर्गा-सप्तशती

१. श्री चण्डी-कवचम्

विनियोग : ॐ अस्य श्रीचण्डी - कवचस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्री चामुण्डा देवता । अङ्ग - न्यासोक्त - मातरो बीजं । दिग्-बन्ध-देवताः तत्त्वं । श्रीजगदम्बा - प्रीत्यर्थे सप्तशती-पाठाङ्गत्वेन पाठे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ॐ यद्-गुह्यं परमं लोके, सर्व - रक्षा - करं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं, तन्मे ब्रूहि पितामह ! ।।१ ।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

अस्ति गुह्य - तमं विप्र !, सर्व - भूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं, तच्छृणुष्व महा-मुने ! ।।२ ।।
प्रथमं शैल - पुत्री च, द्वितीयं ब्रह्म - चारिणी ।
तृतीयं चन्द्र - घण्टेति, कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ।।३ ।।
पञ्चमं स्कन्द - मातेति, षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं काल - रात्रीति, महा-गौरीति चाष्टमम् ।।४ ।।
नवमं सिद्धि-दात्री च, नव - दुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि, ब्रह्मणैव महात्मना ।।५ ।।
अग्निना दह्य-मानास्तु, शत्रु - मध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव, भयार्त्ताः शरणं गताः ।।६ ।।

न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रण – सङ्कटे ।
नापदं तस्य पश्यामि, शोक–दुःख–भयं न हि ।।७।।
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं, तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि !, रक्षसे तान् न संशयः ।।८।।
प्रेत – संस्था तु चामुण्डा, वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गज – समारूढा, वैष्णवी गरुडासना ।।९।।
माहेश्वरी वृषारूढा, कौमारी शिखि – वाहना ।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी, पद्म–हस्ता हरि–प्रिया ।।१०।।
श्वेत–रूप–धरा देवी, ईश्वरी वृष – वाहना ।
ब्राह्मी हंस – समारूढा, सर्वाभरण–भूषिता ।।११।।
इत्येता मातरः सर्वाः, सर्व–योग–समन्विताः ।
नानाऽऽभरण–शोभाढ्य, नाना–रत्नोपशोभिताः ।।१२।।
दृश्यन्ते रथमारूढा, देव्यः क्रोध – समाकुलाः ।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं, हलं च मुसलायुधम् ।।१३।।
खेटकं तोमरं चैव, परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च, शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ।।१४।।
दैत्यानां देह – नाशाय, भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं, देवानां च हिताय वै ।।१५।।
नमस्तेऽस्तु महा – रौद्रे, महा–घोर–पराक्रमे !
महा – बले महोत्साहे ! महा–भय–विनाशिनि! ।।१६।।
त्राहि मां देवि ! दुष्प्रेक्ष्ये !, शत्रूणां भय–वर्धिनि !
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री, आग्नेय्यामग्नि–देवता ।।१७।।

दक्षिणेऽवतु वाराही, नैर्ऋत्यां खड्ग - धारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद्-वायव्यां मृग-वाहिनी ।।१८।।
उदीच्यां पातु कौमारी, ऐशान्यां शूल - धारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ।।१९।।
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शव - वाहना ।
जया मे चाग्रतः पातु, विजया पातु पृष्ठतः ।।२०।।
अजिता वाम - पार्श्वे तु, दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ।।२१।।
माला - धरी ललाटे च, भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये, यम - घण्टा च नासिके ।।२२।।
शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये, श्रोत्रयोर्द्वार - वासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेत्, कर्ण - मूले तु शाङ्करी ।।२३।।
नासिकायां सुगन्धा च, उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृत - कला, जिह्वायां च सरस्वती ।।२४।।
दन्तान् रक्षतु कौमारी, कण्ठ-देशे तु चण्डिका ।
घण्टिकां चित्र-घण्टा च, महा-माया च तालुके ।।२५।।
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद्, वाचं मे सर्व - मङ्गला ।
ग्रीवायां भद्र - काली च, पृष्ठ - वंशे धनुर्धरी ।।२६।।
नील-ग्रीवा बहिः - कण्ठे, नलिकां नल - कूबरी ।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद्, बाहू मे वज्र-धारिणी ।।२७।।
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चांगुलीषु च ।
नखाञ्छुलेश्वरी रक्षेत्, कुक्षौ रक्षेत् कुलेश्वरी ।।२८।।

स्तनौ रक्षेन् महा–देवी, मन: शोक–विनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी, उदरे शूल–धारिणी ।।२९।।
नाभौ च कामिनी रक्षेद्, गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेढ्रं, गुदे महिष – वाहिनी ।।३०।।
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्य – वासिनी ।
जङ्घे महा–बला रक्षेत्, सर्व – काम – प्रदायिनी ।।३१।।
गुल्फयोर्नारसिंही च, पाद – पृष्ठे तु तैजसी ।
पादांगुलीषु श्री रक्षेत्, पादाधस्तल – वासिनी ।।३२।।
नखान् दंष्ट्रा कराली च, केशांश्चैवोर्ध्व – केशिनी ।
रोम – कूपेषु कौबेरी, त्वचं वागीश्वरी तथा ।।३३।।
रक्त–मज्जा–वसा – मांसान्यस्थि–मेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि काल – रात्रिश्च, पित्तं मुकुटेश्वरी ।।३४।।
पद्मावती पद्म – कोशे, कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वाला–मुखी नख–ज्वालामभेद्यासर्व–सन्धिषु ।।३५।।
शुक्रं ब्रह्माणी में रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहङ्कारं मनो बुद्धिं, रक्षेन् मे धर्म–धारिणी ।।३६।।
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।
वज्र–हस्ता च मे रक्षेत्, प्राणं कल्याण–शोभना ।।३७।।
रसे रूपे च गन्धे च, शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव, रक्षेन् नारायणी सदा ।।३८।।
आयू रक्षतु वाराही, धर्मं रक्षतु वैष्णवी ।
यश: कीर्तिं च लक्ष्मीं च, धनं विद्यां च चक्रिणी ।।३९।।
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत् , पशून्मे रक्ष चण्डिके ।

पुत्रान् रक्षेन् महा–लक्ष्मीः, भार्यां रक्षतु भैरवी ।।४०।।
पन्थानं सुपथा रक्षेन्, मार्गं क्षेम–करी तथा ।
राज–द्वारे महा–लक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ।।४१।।
रक्षा–हीनं तु यत–स्थानं, वर्जितं कवचेन तु ।
तत् –सर्वं रक्ष मे देवि ।, जयन्ती पाप–नाशिनी ।।४२।।
पदमेकं न गच्छेत् तु, यीदच्छेच्छुभमात्मनः ।
कवचेनावृतो नित्यं, यत्र यत्रैव गच्छति ।।४३।।
तत्र तत्रार्थ – लाभश्च, विजयः सार्व – कामिकः ।
यं यं चिन्तयते कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।।४४।।
निर्भयो जायते मर्त्यः, संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत् पूज्यः, कवचेनावृतः पुमान् ।।४५।।
इदं तु देव्याः कवचं, देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत प्रयतो नित्यं, त्रि–सन्ध्यं श्रद्धयाऽन्वितः ।।४६।।
दैवी कला भवेत् तस्य, त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
जीवेद् वर्ष – शतं साग्रमपमृत्यु – विवर्जितः ।।४७।।
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे, लूता – विस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव, कृत्रिमं चापि यद्–विषम् ।।४८।।
अभिचाराणि सर्वाणि, मन्त्र – यन्त्राणि भू–तले ।
भू – चराः खेचराश्चैव, जलजाश्चोपदेशिकाः ।।४९।।
सहजा कुलजा माला, डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्ष – चरा घोरा, डाकिन्यश्च महा – बला ।।५०।।
ग्रह – भूत – पिशाचाश्च, यक्ष – गन्धर्व – राक्षसाः ।

ब्रह्म – राक्षस – वेताला:, कूष्माण्डा भैरवादय: ।।५१ ।।
नश्यन्ति दर्शनात् तस्य, कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजो – वृद्धि–करं परम् ।।५२ ।।
यशसा वर्धते सोऽपि, कीर्ति – मण्डित – भू–तले ।
पठेत् 'सप्त–शतीं चण्डीं', कृत्वा तु 'कवचं' पुरा ।।५३ ।।
यावद् भू–मण्डलं धत्ते, स–शैल–वन–काननम् ।
तावत् तिष्ठति मेदिन्यां, सन्तति: पुत्र–पौत्रिकी ।।५४ ।।
देहान्ते परमं स्थानं, यत् – सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं, महा–माया – प्रसादत: ।।५५ ।।
परमैश्वर्यमतुलं, प्राप्स्यते भू – तले पुमान् ।
लभते परमं रूपं, शिवेन सह मोदते ॐ ।।५६ ।।

।। श्री चण्डी–कवचं सम्पूर्णम् ।।

श्री अर्गला - स्तोत्रम्

विनियोग: ॐ अस्य श्रीअर्गला –स्तोत्र–मन्त्रस्य श्री विष्णु: ऋषि । अनुष्टुप् छन्द: । श्रीमहा – लक्ष्मी: देवता । श्रीजगदम्बा – प्रीत्यर्थे सप्तशती पाठाङ्गत्वेन पाठे विनियोग: ।

ॐ नमश्चण्डिकायै

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ॐ जयन्ती मङ्गला काली, भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री, स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ।।१।।

जय त्वं देवि ! चामुण्डे ! जय भूतार्ति – हारिणि ! ।
जय सर्व–गते ! देवि !, काल–रात्रि ! नमोस्तु ते ।।२।।

मधु – कैटभ – विद्रावि ! विधातृ – वरदे ! नम: ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।३।।

महिषासुर – निर्णाशि !, भक्तानां सुखदे ! नम: ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।४।।

रक्त – बीज – क्षये देवि !, चण्ड–मुण्ड–विनाशिनि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।५।।

शुम्भस्यैव, निशुम्भस्य, धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।६।।

वन्दितांघ्रि – युगे ! देवि !, सर्व – सौभाग्य – दायिनि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।७।।

अचिन्त्य–रूप–चरिते !, सर्व – शत्रु – विनाशिनि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।८।।

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या, चण्डिके ! दुरितापहे ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।९।।
स्तुवद्भ्यो भक्ति-पूर्वंत्वां, चण्डिके ! व्याधि-नाशिनि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१०।।
चण्डिके ! सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।११।।
देहि सौभाग्यमारोग्यं, देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१२।।
विधेहि द्विषतां नाशं, विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१३।।
विधेहि देवि ! कल्याणं, विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१४।।
सुरासुर - शिरो - रत्न - निघृष्ट-चरणोऽम्बिके ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१५।।
विद्या - वन्तं यशस्वन्तं, लक्ष्मी - वन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१६।।
प्रचण्ड - दैत्य - दर्पघ्ने !, चण्डिके ! प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१७।।
चतुर्भुजे ! चतुर्वक्त्र - संस्तुते ! परमेश्वरि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१८।।
कृष्णेन संस्तुते देवि !, शश्वद्-भक्त्या सदाऽम्बिके ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।१९।।

हिमाचल – सुता – नाथ – संस्तुते ! परमश्वरि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।२०।।

इन्द्राणी – पति – सद्भाव – पूजिते ! परमश्वरि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।२१।।

देवि ! प्रचण्ड – दोर्दण्ड–दैत्य – दर्प – विनाशिनि ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।२२।।

देवि ! भक्त – जनोद्दाम – दत्तानन्दोदयेऽम्बिके ! ।
रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ।।२३।।

पत्नीं मनोरमां देहि, मनोवृत्तानुसारिणीम् ! ।
तारिणीं दुर्ग – संसार – सागरस्य कुलोद्भवाम् ।।२४।।

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु, महा – स्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्त–शती–संख्या–वरमाप्नोति सम्पदाम् ॐ ।।२५।।

।। श्री अर्गला – स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

श्री कीलकम्

विनियोग: ॐ अस्य श्रीकीलक-मन्त्रस्य श्रीशिव ऋषि: । अनुष्टुप् छन्द: । श्रीमहा - सरस्वती देवता । श्रीजगदम्बा - प्रीत्यर्थे सप्तशती - पाठाङ्गत्वेन पाठे विनियोग: ।

ॐ नमश्चण्डिकायै

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ॐ विशुद्ध-ज्ञान-देहाय, त्रि-वेदी-दिव्य-चक्षुषे ।
श्रेय:-प्राप्ति-निमित्ताय, नम: सोमार्द्ध-धारिणे ।।१ ।।

सर्वमेतद् विजानीयान्मन्त्राणामभि - कीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति, सततं पाठ तत्पर: ।।२ ।।

सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि, वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवीं, स्तोत्र - मात्रेण सिद्ध्यति ।।३ ।।

न मन्त्रो नौषधं तत्र, न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना पाठेन सिद्ध्येत:, सर्वमुच्चाटनादिकम् ।।४ ।।

समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति, लोक - शङ्कामिमां हर: ।
कृत्वा निमन्त्रयामास, सर्वमेवमिदं शुभम् ।।५ ।।

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु, तच्च गुप्तं चकार स: ।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य, तां यथावन्-नियन्त्रणाम् ।।६ ।।

सोऽपि क्षेममवाप्नोति, सर्वमेवं च संशय: ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहित: ।।७ ।।

ददाति प्रति - गृह्णाति, नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थं रूपेण 'कीलेन', महा-देवेन कीलितम् ।।८ ।।

यो निष्कीलां विधायैनां, नित्यं पठति संस्फुटम् ।
स सिद्धः स गणः सोऽपि, गन्धर्वो जायते नरः ।।९।।
न चैवाप्यटतस्तस्य, भयं क्वापीह जायते ।
नापमृत्यु – वशं याति, मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।।१०।।
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत, न कुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ।।११।।
सौभाग्यादि च यत्–किञ्चिद्, दृश्यते ललना – जनें ।
तत्–सर्वं तत्–प्रसादेन, तेन जाप्यमिदं शुभम् ।।१२।।
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः ।
भवत्येव समग्रापि, ततः प्रारभ्यमेव तत् ।।१३।।
ऐश्वर्यं यत् – प्रसादेन, सौभाग्यारोग्य – सम्पदः ।
शत्रु–हानिः परो मोक्षः, स्तूयते सा न किं जनैः ॐ ।।१४।।

।। श्रीकीलकं– सम्पूर्णम् ।।

श्री वेदोक्तं रात्रि-सूक्तम्

विनियोग: ॐ अस्य श्री वैदिक – रात्रि – सूक्तस्य श्रीकुशिक: सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो ऋषि: । गायत्री छन्द: । श्रीकाल–रात्रि: देवता । श्रीजगदम्बा – प्रीत्यर्थे सप्तशती – पाठाङ्गत्वेन पाठे विनियोग: ।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभि: ।
विश्वा अधि–श्रियोऽधित ।।१।।

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वत: ।
ज्योतिषा बाधते तम: ।।२।।

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तम: ।।३।।

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्न विक्ष्महि ।
वृक्षे न वसतिं वय: ।।४।।

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिण: ।
नि श्येनासश्चिदर्थिन: ।।५।।

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथा न: सुतरा भव ।।६।।

उप मा पेपिशत्तम: कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेव यातय ।।७।।

उप ते गा इवाकरं वृमाणीष्व दुहितर्दिव: ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॐ ।।८।।

।। श्रीवेदोक्तं रात्रि–सूक्तं सम्पूर्णम् ।।

अथ नवार्णविधिः

श्रीगणपतिर्जयति । ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वती-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे । महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि । ऐं बीजाय नमः, गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः । पादयोः । क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।

करन्यासः

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः
ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः
ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः
ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः
ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डयै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः
ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा
ॐ क्लीं शिखायै वषट्
ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्
ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चै अस्त्राय फट्

अक्षरन्यासः

ॐ ऐं नमः, शिखायाम् । ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे । ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे । ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे । ॐ मुं नमः, वामकर्णे । ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे । ॐ यैं नमः, वामनासापुटे । ॐ विं नमः, मुखे । ॐ च्चें नमः, गुह्ये ।

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः । ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः । ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः । ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥१॥
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥२॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥३॥
ॐ ह्रीं अक्षयमालिकायै नमः

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ।।

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ।

ॐ ऐं ह्री क्लीं चामुण्डायै विच्चे (इति मन्त्र)
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरी ।।

शप्तशतीन्यासः

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुः सामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ।। अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ।। तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ।। मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ।। अनामिकाभ्यां नमः ।

ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ।। कनिष्ठिकाभ्या नमः ।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।। करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा० — हृदयाय नमः ।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि० — शिरसे स्वाहा ।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च० — शिखायै वषट् ।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि० — कवचाय हुम् ।
ॐ खड्गशूलगदादीनि० — नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे० — अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेवितां ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

सिद्ध श्री महाकाली-सूक्तम्

।। शिव उवाच ।।

शिवामनन्यां विविध-प्रभावां, कालीं कला-मालिनीं विश्व-वन्द्याम् ।
कपाल-खट्वाङ्ग-धरां, नृ-मुण्ड-मालां विभूषां मृग-चर्म-शोभम् ।।१।।
सशुष्क-मांसां च शवासनस्थां, विभीषणां भीषयन्तीं सुरारीन् ।
रक्त-प्रियां मांस-मदावघूर्णां, कालीं शरण्यां शरणं व्रजामि ।।२।।
कालि कपालिनि शूलिनि भैरवि मातङ्गि पञ्चमि त्रिपुरे ।
वाग् देवि विन्ध्य-वासिनि बाले भुवनेशि पालय चिरं माम् ।।३।।
सुघोर-बीजं च कपीश्वरं च, चिन्ता-मणिं कुब्जिक-काम-राजम् ।
विद्यां विद्यासु च सु-काम-राजं, कामः कला-मालिनि काम-राजम् ।।४।।
वह्नेर्वधूर्मन्त्र-विराज ईशे !, विश्वं पुनातीश्वरि विश्व - वन्द्ये !
मन्त्रेण चानेन च सिद्धयश्च, सु - सिद्धयः सर्व - जगन्निवासे ! ।।५।।
पञ्चार-युग्मं च त्रिकोण-युग्मं, पुनश्च पञ्चार-युगेन बद्धम् ।
कलाष्ट-कोणाङ्कित भू-गृहं च, यन्त्रेश्वरं त्वत् पद-पङ्कजस्थम् ।।६।।
सम्पूज्य यन्त्रं तव विश्व-नायिके !, निष्पापिनस्ते सहसा भवन्ति ।
ये साधका वै कुल-मार्ग-सारिणः, कुलानुवृत्त्या परमाः पवित्राः ।।७।।
ते सिद्धिमृद्धिं च यशोऽनुगम्यां, नृणां वशीकृत्य भवन्ति भूपाः ।
समस्त-मन्त्रेण विधाय चाङ्ग-न्यासादिकं भक्ति-सुभाव-युक्ताः ।।८।।
ते किङ्करी-कृत्त्य गृणन्ति देवा, नित्ये जगत्येव विभूति-युक्ते !
वदामि नान्यं न शृणोमि चान्यं, गृह्णामि नान्यं न विचिन्तयामि ।।९।।
स्मरामि नान्यं न भजामि चान्यं, ध्यायामि नान्यं न वितर्कयामि ।
गायामि नान्यं तव पादमन्तरात्, त्वां विश्व-रूपां शरणं प्रपद्ये ।।१०।।

।। श्रीमहा-काली-सूक्तं सम्पूर्णम् ।।

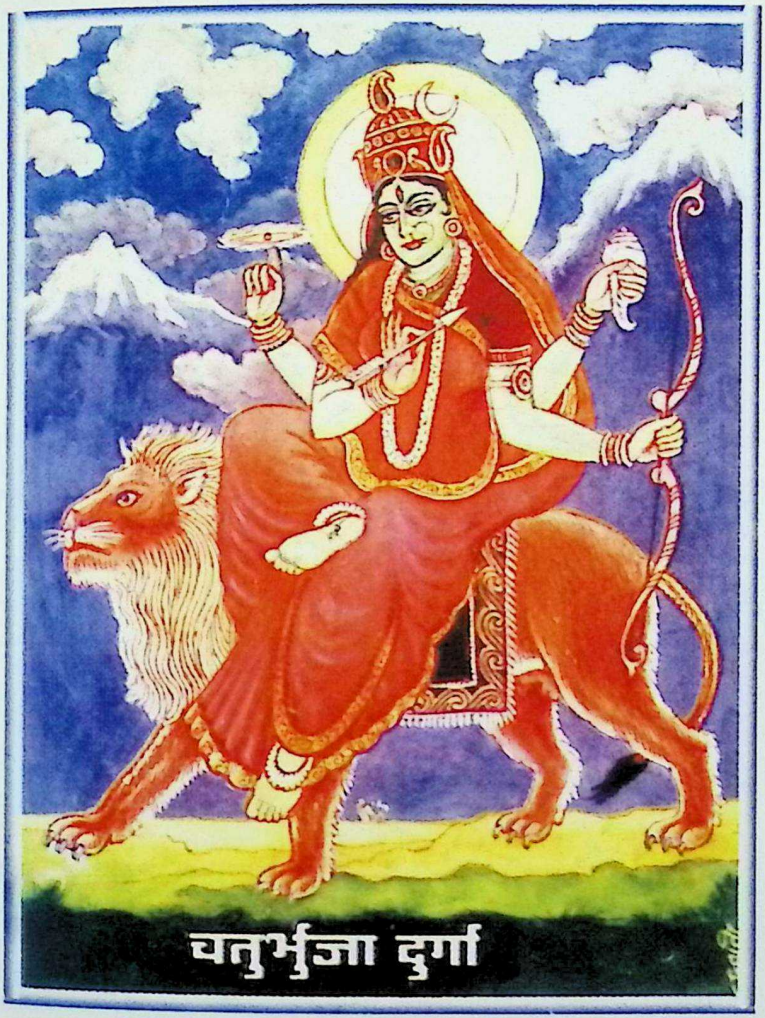

ंहस्था शशि - शेखरा मरकत - प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः।
खं चक्र - धनुः - शराँश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।।
ामुक्तांगद-हार-कङ्कण-रणत्-काञ्ची-क्वणन्-नूपुरा ।
र्गा दुर्गति-हारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्-कुण्डला ।।

।। श्री चतुर्भुजा-दुर्गायै नमः।।

खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघान् छूलं भुशुण्डीं शिर
शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रि-नयनां सर्वाङ्ग - भूषावृताम्
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाद-दशकां सेवे महा-कालिकाम
यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम

।। श्री महा-काल्यै नमः ।।

चन्द्र-हासोज्ज्वल-करा, शार्दूल-वर-वाहना ।
कात्यायनी शुभं दद्याद्, देवी दानव-घातिनी ।।

।। श्री कात्यायनी-दुर्गायै नमः ।।

सिंहासन-गता नित्यं, पद्माञ्चित-कर-द्वया ।
शुभदाऽस्तु सदा देवी, स्कन्द-माता यशस्विनी ।।

।। श्री स्कन्द-माता-दुर्गायै नमः ।।

सुरा-सम्पूर्ण-कलशं, रुधिराप्लुतमेव च ।
दधाना हस्त-पद्माभ्यां, कूष्माण्डा शुभदाऽस्तु मे ।।

।। श्री कूष्माण्डा-दुर्गायै नमः ।।

पिण्डज-प्रवरारूढा, चण्ड-कोपास्त्रकैर्युता ।
प्रसादं तनुते मह्यं, चन्द्र-घण्टेति विश्रुता ।।

।। श्री चन्द्र-घण्टा-दुर्गायै नमः ।।

दधाना कर-पद्माभ्यामक्ष-माला-कमण्डलू ।
देवी प्रसीदतु मयि, ब्रह्म-चारिण्यनुत्तमा ।।

।। श्री ब्रह्म-चारिणी-दुर्गायै नमः ।।

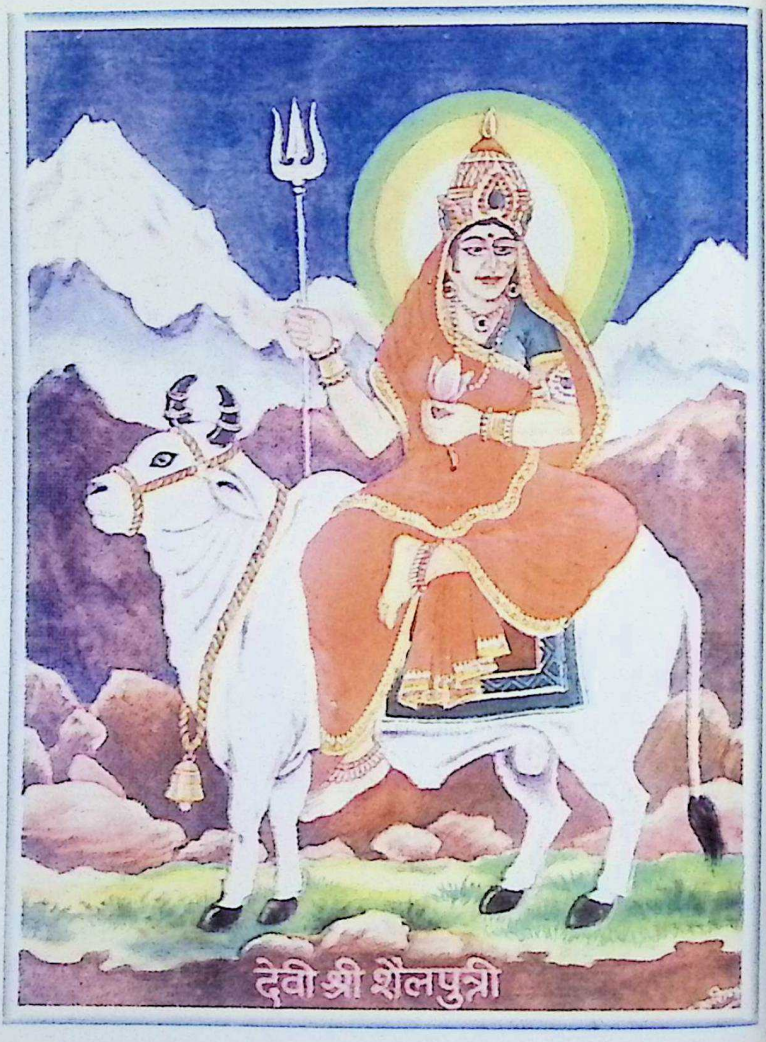

वन्दे वाञ्छित-लाभाय, चन्द्रार्ध-कृत-शेखराम् ।
वृषारूढां शूल-धरां, शैल-पुत्रीं यशस्विनीम् ।।

।। श्री शैल-पुत्री-दुर्गायै नमः ।।

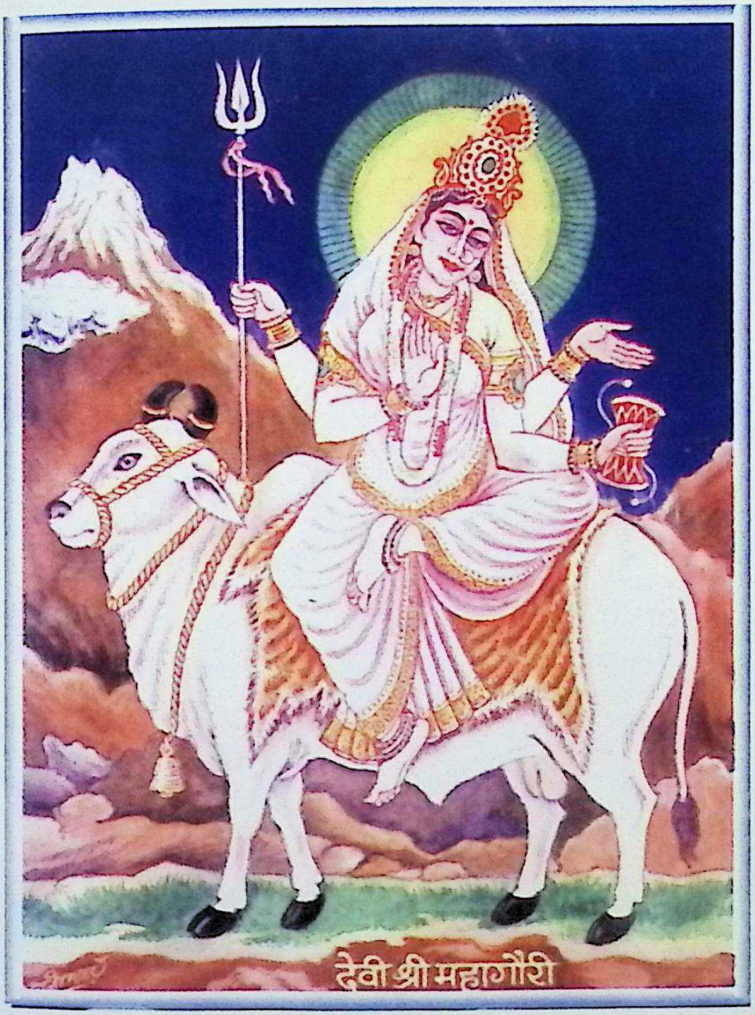

श्वेते वृषे समारूढा, श्वेताम्बर-धरा शुचिः।
महा-गौरी शुभं दद्यान्, महा-देव-प्रमोददा ।।

।। श्री महा-गौरी-दुर्गायै नमः ।।

देवी श्री कालरात्रि

एक-वेणी जपाकर्ण-पूरा नग्ना खरास्थिता।
लम्बोष्ठी कर्णिका-कर्णी, तैलाभ्यक्त-शरीरिणी ।।
वाम - पादोल्लसल्लोह - लता - कण्टक - भूषणा।
वर्धन्-मूर्धं-ध्वजा कृष्णा, काल-रात्रिर्भयङ्करी।।

।। श्री काल-रात्रि-दुर्गायै नमः ।।

ण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः सायकम्।
स्ताब्जैर्दधतीं घनान्त-विलसच्छीतांशु-तुल्य-प्रभाम् ।।
ौरी-देह-समुद्भवां त्रि-जगतामाधार-भूतां महा-
र्वामत्र सरस्वतीमनु-भजे शुम्भादि-दैत्यार्दिनीम् ।।

।। श्री महा-सरस्वत्यै नमः ।।

अक्ष-स्त्रक्-परशुं गदेषु-कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकाम्
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म-जलजं घण्टां सुरा-भाजनम्
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम्
सेवे सैरिभ-मर्दिनीमिह महा-लक्ष्मीं सरोज-स्थिताम्

।। श्री महा-लक्ष्म्यै नमः ।।

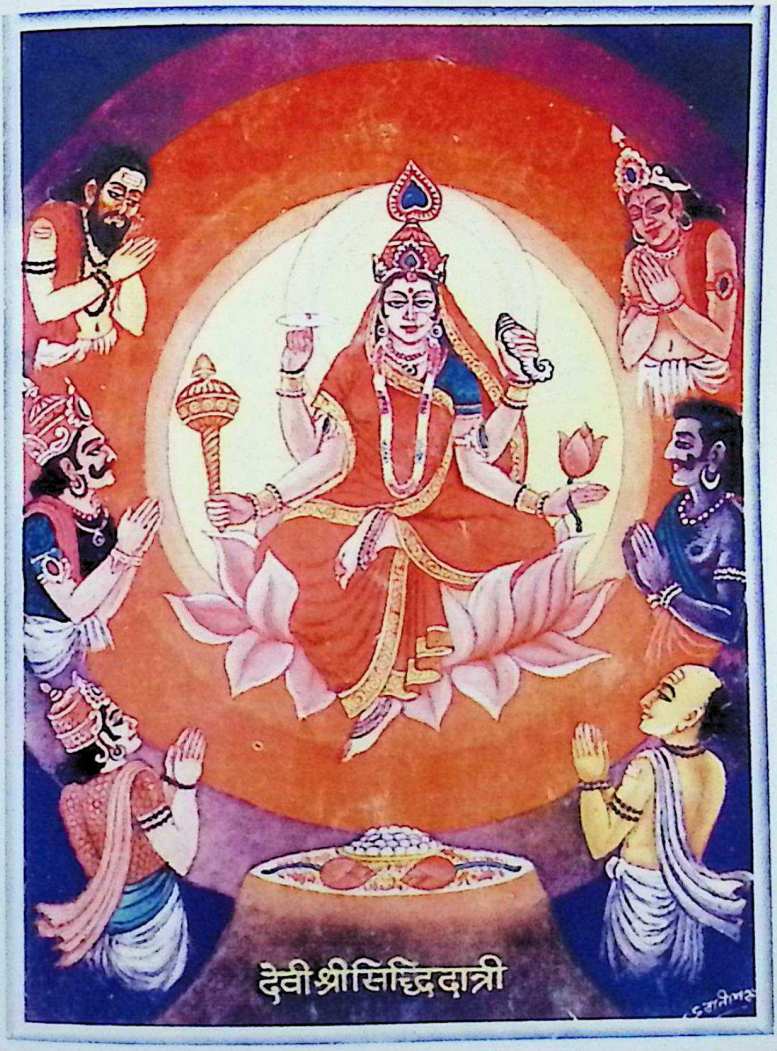

सिद्ध - गन्धर्व - यक्षाद्यैरसुरैरमरैरपि
सेव्य-माना सदा भूयात्, सिद्धिदा सिद्धि-दायिनी ।

।। श्री सिद्धिदा-दुर्गायै नमः ।।

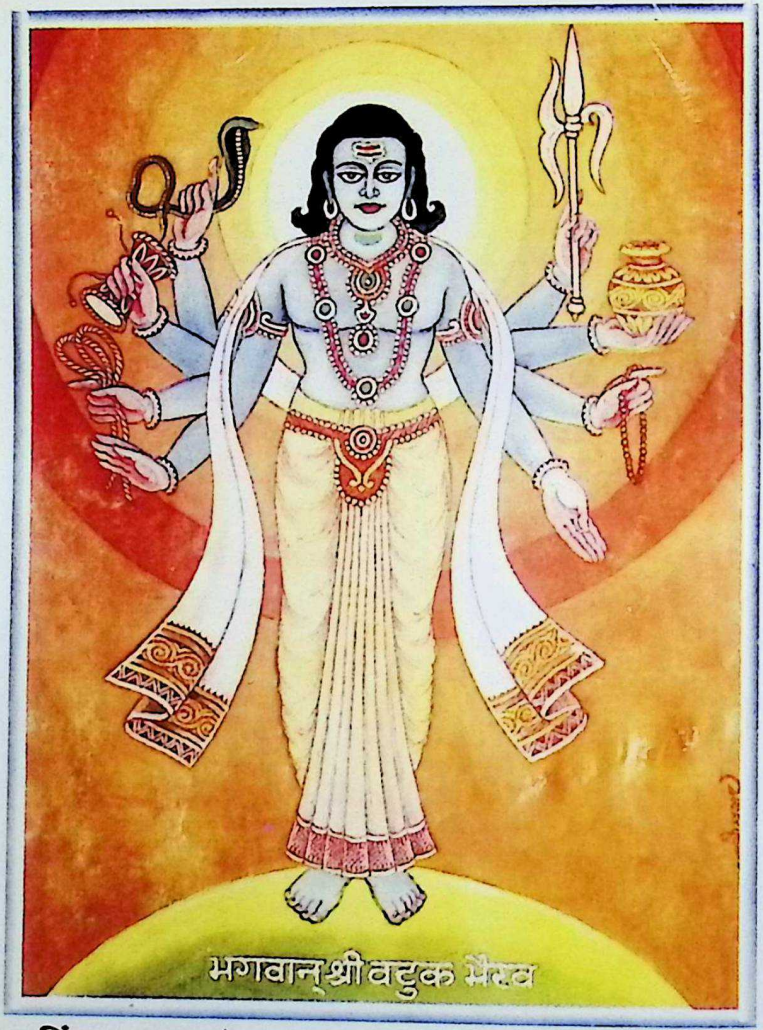

फणिं डमरुकं मालामङ्कुशं पाशमेव च ।
अमृत-कलशं चैव, वरदाभय-धारिणम् ।
कालाम्बुद-श्यामलाङ्गं, वन्दे बटुक-भैरवम् ।।

।। श्री बटुक-भैरवाय नमः ।।

प्रथम चरितम्

।। प्रथमोध्याय ।।

मधु-कैटभ-वध:

विनियोग-ॐ प्रथम-चरितस्य श्रीब्रह्मा ऋषि: । गायत्री छन्द: । श्री महा-काली देवता । नन्दा शक्ति: । रक्त - दन्तिका बीजं । अग्नि: तत्त्वं । ऋग्-वेद: स्वरूपं । श्रीमहा-काली-प्रीत्यर्थे प्रथम-चरित-पाठे विनियोग: ।

ऋष्यादि-न्यास-श्रीब्रह्मर्षये नम: शिरसि । गायत्री - छन्दसे नम: मुखे । श्रीमहा-काली-देवतायै नम: हृदि । नन्दा-शक्तये नम: नाभौ: । रक्त-दन्तिका-बीजाय नम: लिङ्गे । अग्नि-तत्त्वाय नम: गुह्ये । ऋग्-वेद-स्वरूपाय नम: पादौ । श्रीमहा-काली-प्रीत्यर्थे प्रथम-चरित-पाठे विनियोगाय नम: सर्वाङ्गे ।

।। श्रीमहा-काली-ध्यानम् ।।

खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिधान् छूलं भुशुण्डीं शिर: ।
शङ्खं चन्दधतीं करेस्त्रि-नयनां सर्वाङ्ग - भूषावृताम् ।।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाद-दशकां सेवा महा-कालिकाम् ।
यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधु-कैटभम् ।।

।। पूर्व - पीठिका।।

ॐ नमश्चण्डिकायै
तपस्यन्तं महात्मानं, मार्कण्डेयं महा-मुनिम् ।
व्यास - शिष्यो महा-तेजा, जैमिनि: पर्यपृच्छत: ।।

॥ जैमिनि उवाच ॥

मार्कण्डेय ! महा–प्राज्ञ !, सर्व–शास्त्र – विशारद !
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण, देवी – माहात्म्यमुत्तमम् ॥

॥ ॐ ऐं मार्कण्डेय उवाच ॥

सावर्णिः सूर्य – तनयो, यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं, विस्तराद् गदतो मम ॥१॥
महा – मायाऽनुभावेन, यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महा – भागः, सावर्णिस्तनयो रवेः ॥२॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं, चैत्र– वंश – समुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाऽभूत्, समस्ते क्षिति – मण्डले ॥३॥
तस्य पालयतः सम्यक्, प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः, कोला–विध्वंसिनस्तदा ॥४॥
तस्य तैरभवद् युद्धमति – प्रबल – दण्डिनः ।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धेः, कोला – विध्वंसिभिर्जितः ॥५॥
ततः स्व–पुरमायातो, निज – देशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महा – भागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥६॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोषो बलं चापहृतं, तत्रापि स्व–पुरे ततः ॥७॥
ततो मृगया – व्याजेन, हृत – स्वाम्यः स भू–पतिः ।
एकाकी हयमारुह्य, जगाम गहनं वनम् ॥८॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद्, द्विज – वर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्त–श्वापदाकीर्णं, मुनि–शिष्योप–शोभितम् ॥९॥

तस्थौ कश्चित् स कालं च, मुनिना तेन सत्–कृतः ।
इतश्चेतश्च विसरंस्तस्मिन् मुनि – वराश्रमे ।।१०।।
सोऽचिन्तयत् तदा तत्र, ममत्वाकृष्ट – चेतनः ।
मत्–पूर्वैः पालितं पूर्वं, मया हीनं पुरं हि तत् ।।११।।
मद्–भृत्यैस्तैरसद् – वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ।
न जाने स प्रधानो मे, शूर – हस्ती सदा – मदः ।।१२।।
मम वैरि – यशं यातः, कान् भोगानुप–लप्स्यते ।
ये ममानुगता नित्यं, प्रसाद – धन – भोजनैः ।।१३।।
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य, कुर्वन्त्यन्य – मही–भृताम् ।
असम्यग्–व्यय–शीलैस्तैः, कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ।।१४।।
सञ्चितः सोऽति – दुःखेन, क्षयं कोषो गमिष्यति ।
एतच्चान्यच्च सततं, चिन्तयामास पार्थिवः ।।१५।।
*एवं चिन्ता–परो राजा, वृक्ष – मूलं स्थितो यदा ।
तदाऽऽजगाम वैश्यस्तु, कश्चिदार्त्ति – परस्तदा ।।१६।।*
तत्र विप्राश्रमाभ्यासे, वैश्यमेकं ददर्श सः ।
स पृष्टस्तेन– कस्त्वं भो !, हेतुश्चागमनेऽत्र कः ।।१७।।
स शोक इव कस्मात् त्वं, दुर्मना इव लक्ष्यसे ?,
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भू–पतेः प्रणयोदितम् ।।१८।।

।। वैश्य समाधि उवाच ।।

* मित्राहं वैश्य–जातीयः, समाधिर्नाम विश्रुतः ।*
पुत्र – दारैर्निरस्तश्च, धन – लोभादसाधुभिः ।।१९।।
विहीनश्च धनैर्दारैः, पुत्रैरादाय मे धनम् ।

*स्व-जनेन च सन्त्यक्तः, प्राप्तोऽस्मि वनमाशु वै ।।२०।
वनमभ्यागतो दुःखी, निरस्तश्चाप्त - बन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां, कुशलाकुशलात्मिकाम् ।।२१।
प्रवृत्तिं स्व - जनानां च, दाराणां चात्र संस्थितः ।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ।।२२।
कथं ते किं नु सद्-वृत्ताः, दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ।
*कोऽसि त्वं भाग्य-वान् भासि ?, कथयस्व प्रियाधुना! ।।२३।।

।। राजा सुरथ उवाच ।।

* सुरथो नाम राजाऽहं, दस्युभिः पीडितोऽभवम् ।
प्राप्तोऽस्मि गत-राज्योऽत्र, मन्त्रिभिः परि-वञ्चितः ।।२४।।
*कुटुम्बं मे निरालम्बं, मया हीनं सु-दुःखितम् ।
भविष्यति च चिन्ताऽऽर्त्तं, व्याधि-शोकायतापितम् ।।२५।।
यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः, पुत्र - दारादिभिर्धनैः ।
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ? ।।२६।
*यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरसद् - भूतैः सु-वालिशैः ।
तान् दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य, भविष्यति महा-मते ? ।।२७।।*

।। वैश्य समाधि उवाच ।।

एवमेतद् यथा प्राह, भवानस्मद् - गतं वचः ।
*मनो मे न स्थिरं राजनभूवदद्य दुःखितम् ।।२८।
चिन्तायऽत्र कुटुम्बस्य, दुस्त्यजस्य दुरात्मभिः ।
किं करोमि न बध्नाति, मम निष्ठुरतां मनः ।।२९।
यैः सन्त्यज्य पितृ - स्नेहं, धन - लुब्धैर्निराकृतः ।
पतिः स्व - जन - हार्दं च, हार्दिं तेष्वेव मे मनः ।।३०।।

किमेतन्नाभिजानामि, जानन्नपि महा – मते !
यत् – प्रेम – प्रवणं चित्तं, विगुणेष्वपि बन्धुषु ।।३१।।
तेषां कृते मे निःश्वासो, दौर्मनस्यं च जायते ।
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ! ।।३२।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततस्तौ सहितौ विप्र ! तं मुनिं समुपस्थितौ ।
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ, स च पार्थिव – सत्तमः ।।३३।।
कृत्वा तु तौ यथा – न्यायं, यथार्हं तेन संविदम् ।
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्य – पार्थिवौ ।।३४।।
*गत्वा तं प्रणिपत्याह, राजा ऋषिमनुत्तमम् ।
तमुवाच परं ज्ञानं, शोक – मोह – विनाशनम् ।।३५।।*

।। राजा सुरथ उवाच ।।

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ।
दुःखाय यन्मे मनसः, स्व–चित्तायत्ततां विना ।।३६।।
ममत्वं गत – राज्यस्य, राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोऽपि यथाऽज्ञनस्य, किमेतन्मुनि – सत्तम ? ।।३७।।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ।
स्व – जनेन च सन्त्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।।३८।।
एवमेष तथाऽहं च, द्वावप्यत्यन्त – दुःखितौ ।
दृष्ट – दोषेऽपि विषये, ममत्वाकृष्ट – मानसौ ।।३९।।

तत् – किमेतन्महा – भाग ?, यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ।
ममस्य च भवत्येषा, विवेकान्धस्य मूढता ।।४०।।
* मोहो नैवापसरति, किं तत् – कारणमद्भुतम् ।
स्वामिँस्त्वमसि सर्वज्ञः, सर्व–संशय–नाश–कृत् ! ।।४१।।*

।। मेधा–ऋषिरुवाच ।।

ज्ञानमस्ति समस्तस्य, जन्तोर्विषय – गोचरे ।
विषयश्च – महा भाग !, याति चैवं पृथक् पृथक् ।।४२।।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्, रात्रावन्धास्तथाऽपरे ।
केचिद् दिवा तथा रात्रौ, प्राणिनस्तुल्य – दृष्टयः ।।४३।।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं, किन्तु ते नहि केवलम् ।
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे, पशु – पक्षि – मृगादयः ।।४४।।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां, यत्–तेषां मृग–पक्षिणाम् ।
मनुष्याणां च यत्–तेषां, तुल्यमन्यत् तथाभयोः ।।४५।।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्, पतङ्गाञ्छाव – चञ्चुषु ।
कण–मोक्षादृतान् मोहात्, पीड्यमानानपि क्षुधा ।।४६।।
मानुषा – मनुज – व्याघ्र !, साभिलाषाः सुतान् प्रति ।
लोभात् प्रत्युपकाराय, नन्वेतान् किं न पश्यसि ? ।।४७।।
तथापि ममताऽऽवर्त्ते, मोह – गर्ते निपातिताः ।
महा–माया–प्रभावेण, संसार–स्थिति–कारिणा ।।४८।।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो, योग – निद्रा जगत् – पतेः ।
महा – माया हरेश्चैषा, तया सम्मोह्यते जगत् ।।४९।।

ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय, महा – माया प्रयच्छति ।।५०।।
तया विसृज्यते विश्वं, जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा, नृणां भवति मुक्तये ।।५१।।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु – भूता सनातनी ।
संसार – बन्ध – हेतुश्च, सैव सर्वेश्वरेश्वरी ! ।।५२।।

।। राजा सुरथ उवाच ।।

भगवन् ! का हि सा देवी, महा–मायेति यां भवान् ।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना, सा कर्मास्याश्च किं द्विज ? ।।५३।।
यत्–प्रभावा च सा देवी, यत्–स्वरूपा यदुद्भवा ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि, त्वत्तो ब्रह्म–विदां वर! ।।५४।।

।। मेधा–ऋषिरुवाच ।।

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ।
तथापि तत् – समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।।५५।।
देवानां कार्य – सिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।
उत्पन्नेति तदा लोके, सा नित्याऽप्यभिधीयते ।।५६।।
योग – निद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवी – कृते ।
आस्तीर्य शेषमभजत् – कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।।५७।।
तदा द्वावसुरौ घोरौ, विख्यातौ मधु – कैटभौ ।
विष्णु – कर्ण – मलोद्भूतौ, हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।।५८।।

स नाभि-कमले विष्णोः, स्थितो ब्रह्मा प्रजा-पतिः ।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ, प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।।५९।
तुष्टाव योग - निद्रां तामेकाग्र - हृदय - स्थितः ।
विबोधनार्थाय हरेर्हरि - नेत्र - कृतालयाम् ।।६०।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं, स्थिति - संहार - कारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ।।६१।

।। ब्रह्मोवाच ।।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि, वषट्-कार-स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे ! नित्या, त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।।६२।
अर्ध-मात्रा-स्थिता नित्या, यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री, त्वं देवि ! जननी परा ।।६३।
त्वयैतद् धार्यते विश्वं, त्वयैतत् सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत् पाल्यते देवि ! त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।।६४।
विसृष्टौ सृष्टि - रूपा त्वं, स्थिति-रूपा च पालने ।
तथा संहृति - रूपान्ते, जगतोऽस्य जगन्मये ! ।।६५।
महा-विद्या महा - माया, महा - मेधा महा - स्मृतिः ।
महा - मोहा च भवती, महा - देवी महा-सुरी ।।६६।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य, गुण - त्रय - विभाविनी ।
काल - रात्रिर्महा - रात्रिर्मोह - रात्रिश्च दारुणा ।।६७।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोध - लक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।।६८।
खड्गिनी शूलिनी घोरा, गदिनी चक्रिणी तथा ।

शङ्खिनी चापिनी बाण – भुशुण्डी – परिघायुधा ।।६९।।

सौम्या सौम्य – तराऽशेष – सौम्येभ्यस्त्वति – सुन्दरी !
पराऽपराणां परमा, त्वमेव परमेश्वरी ।।७०।।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु, सदसद्वाऽखिलात्मिके !
तस्य सर्वस्य या शक्तिः, सा त्व किं स्तूयसे तदा ।।७१।।

यया त्वया जगत्–सृष्टा, जगत् पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रा–वशं नीतः, कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।।७२।।

विष्णुः शरीर – ग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां, कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।।७३।।

* देवि ! त्वमस्य जगतः, किल मूल–कारणं हि,
ज्ञातं मयाऽधुनाः सकल–वेद–वचोभिरम्ब ।

यत् – प्रभु–विष्णुरप्यखिल–लोक–विवेक–कर्त्ता,
निद्रा–वशं च गमितः, पुरूषोत्तमो विभुः यः ।।७४।।*

*को वेद ते जननि ! मोह – विलास – लीलां,
मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते ।

ईदृक् – तया सकल – भूत – मनो – निवासे,
विद्वत्तमो विबुध – कोटिषु निर्गुणाय ।।७५।।*

*सांख्या वदन्ति पुरुषं प्रकृतिं च यां तां,
चैतन्य – भाव – रहितां जगतश्च कर्त्रीम् ।

किं सादृशाऽसि कथमत्र जगन्निवासश्चैतन्यता–
विरहितो विहितस्त्वयाऽद्य ।।७६।।*

*नाट्य तनोषि सगुणा विविध – प्रकारं,
नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्य–विधान–योगम् ।

ध्यायन्ति यां मुनि – गणा नियतं त्रि–कालं,

सन्ध्या तु नाम परिकल्प्य गुणा भवानि ! ।।७७।।

*बुद्धिर्हि बोध – करणा जगतां सदस्वं,
श्रीश्चासि देवि ! सततं सुखदा सुराणाम्
कीर्तिस्तथा मति – धृति किल कान्तिरेव,
श्रद्धा रतिश्च सकलेषु जनेषु मातः ! ।।७८।।

*नातः परं किल वितर्क – शतैः प्रमाणं,
प्राप्तं मया यदिह दुःखमतिर्गतेन
त्वं चात्र सर्व – जगतां जननी तु सत्यं,
निद्रालुतां वितरता हरिणाऽत्र दृष्टम् ।।७९।।

* त्वं देवि ! वेद – विदुषामपि दुर्विभाव्या,
वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद
यस्मात् त्वदुद्भवमसौ श्रुतिराप्नुवाना,
प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत् ।।८०।।

*कस्ते चरितमखिलं भुवि वेद धीमान्,
नाहं हरिर्न च भवो न सुरास्तथाऽन्ये
ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च,
दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्व–लोके ।।८१।।

*यज्ञेषु देवि ! यदि नाम न ते वदन्ति,
स्वाहा च वेद–विदुषो हवने कृतेऽपि
न प्राप्नुवन्ति सततं मख – भाग – धेयं,
देवास्त्वमेव विबुधेश्वरि ! वृत्ति – दात्री ।।८२।।

* त्राता वयं भगवति ! प्रथमं त्वया वै,

देवारि – सम्भव – भयादधुना तथैव ।
भीतोऽस्मि देवि! वरदे! शरणं गतोऽस्मि,
घोरं निरीक्ष्य मधुना सह कैटभं च ।।८३।।*
*नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेतज्जाने,
त्वयाऽऽत्म–विवशी–कृत–देह–यष्टिः ।
मुञ्चादि – देवमथवा जहि दानवेन्द्रौ,
यद् रोचते तव कुरुष्व महानुभावे ! ।।८४।।*
*जानन्ति ये न तव देवि ! परं प्रभावं,
ध्यायन्ति ते हरि–हरावपि मन्द–चित्ताः ।
ज्ञातं ममाद्य जननि ! प्रकटं प्रमाणं,
यद् विष्णुरप्यति – तरा विवशोऽथ शेते ।।८५।।*
* सिन्धूद्भवाऽपि न हरिं प्रति – बोधितुं वै,
शक्तायति तव वंशानुगमाऽद्य शक्त्या ।
मन्ये त्वया भगवति ! प्रसभं रमाऽपि,
प्रस्वापिता न बुबुधे विवशी – कृतेव ।।८६।।*
*धन्यास्त एव भुवि भक्ति – परा स्तवाद्यौ
त्यक्त्वाऽन्य–देव–भजनं त्वयि लीन–भावाः ।
कुर्वन्ति देवि! भजनं सकलं निकामं,
ज्ञात्वा समस्त – जननीं किल काम – धेनुम् ।।८७।।*
*धी – कान्ति – कीर्ति – शुभ–वृत्ति–गुणादयस्ते,
विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्व चाऽद्य ? ।
वन्दी – कृतो हरिरसौ ननु निद्रयाऽत्र,

शक्त्या तवैव भगवत्यति – मानवत्या ।।८८।।

*त्वं शक्तिरेव जगतामखिल – प्रभावा,
त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भाव–मात्रम्
त्वं क्रीडसे निज – विनिर्मित – मोह – जाले,
नाट्ये यथा विहरते स्व – कृते च नृत्ये ।।८९।।

*विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ,
दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय
त्रातंच सर्वमखिलं विवशोऽक्ततोऽद्य,
यद् रोचते तव तथा प्रकरोषि नूनम् ।।९०।।

*सृष्टवाऽत्र मां भगवति ! प्रविनाशितुं,
चेन्नेच्छाऽस्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम्
कस्मादिमौ प्रकटितो किल काल – रूपौ,
यद् वा भवानि ! हसितुं नु किमिच्छसे माम् ? ।।९१।।

*ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै,
कृत्वाऽखिलं जगदिदं रमसे स्वतन्त्रा
लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव,
हन्तुं स्वमिच्छसि भवानि ! किमत्र चित्रम् ।।९२।।

*काम कुरुष्व क्षयमद्य ममैव मातः,
दुःखं न मे मरणजं जगदम्बिकेऽत्र
कर्त्ता त्वमेव विहितः प्रथमं स चायं,
दैत्याहतोऽथ मृत एव यशो गरिष्ठम् ।।९३।।

*उत्तिष्ठ देवि ! कुरु रूपमिवाद्भूतं त्वां,

मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाल-लीले ! ।
नो चेत् प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ,
यस्त्वत्-साध्यमेतदखिलं किल कार्य-जातम् ।।९४।।*
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि ! संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधु - कैटभौ ।।९५।।
प्रबोधं च जगत् - स्वामी, नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य, हन्तुमेतौ महाऽसुरौ ।।९६।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

एवं स्तुता तदा देवी, तामसी तत्र वेधसा ।
विष्णोः प्रबोधनार्थाय, निहन्तुं मधु - कैटभौ ।।९७।।
नेत्रास्य - नासिका - बाहु - हृदयेभ्यस्तथोरसः ।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ, ब्रह्मणोऽव्यक्त - जन्मनः ।।९८।।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ।
एकार्णवेऽहि - शयनात्, ततः स ददृशे च तौ ।।९९।।
मधु - कैटभौ दुरात्मानावति - वीर्य - पराक्रमौ ।
क्रोध - रक्तेक्षणावत्तुं, ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।।१००।।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां, युयुधे भगवान् हरिः ।
पञ्च - वर्ष - सहस्राणि, बाहु - प्रहरणो विभुः ।।१०१।।
तावप्यति - बलोन्मत्तौ, महा-माया - विमोहितौ ।
उक्त-वन्तौ वरोऽस्मत्तो, व्रियतामिति केशवम् ! ।।१०२।।
*प्रार्थयस्व हृषीकेश!, मनोऽभिलषितं वरम् ।
तयोस्तद् - वचनं श्रुत्वा, प्रत्युवाच जनार्दनः ।।१०३।।*

॥ विष्णुरुवाच ॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ, मम वध्यावुभावपि ।
किमन्येन वरेणात्र, एतावद्धि वृत्तं मम ॥१०४॥

॥ मेधा ऋषिरुवाच ॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा, सर्वमापो – मयं जगत् ।
विलोक्य ताभ्यां गदितो, भगवान कमलेक्षणः ॥१०५॥
आवां जहि न यत्रोर्वी, सलिलेन परिप्लुता ।
तथेत्युक्त्वा भगवता, शङ्ख–चक्र–गदा–भृता ॥१०६॥
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने, जघने शिरसी तयोः ।
*गत – प्राणौ तदा जातौ, दानवौ मधु–कैटभौ ॥१०७॥
एवमेषा समुत्पन्ना, ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु, भूयः शृणु वदामि ते ऐं ॐ ॥१०८॥
ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय – उत्तर – पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-माहात्म्ये सत्या सन्तु । (यजमानस्य कामा) जगदम्बाऽर्पणमस्तु ।

सिद्ध श्री महालक्ष्मी-सूक्तम्

।। हरिरुवाच ।।

परां परेशां जगदादि - भूतां, वरां वरेण्यां वरदां वरिष्ठाम् ।
वरेश्वरीं विबुधैः प्रगतीतां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।१।।
श्रियं समस्तैः निधि-वास-भूतां, महा-लक्ष्मीं धरणी-धराणां च ।
अनादिमादिं परमार्थ-रूपां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।२।।
एकामनेकां विविधां सु-कार्यां, सु-कारणां सदसद्-रूपिणीं च ।
कल्याण-रूपां च शिवां शिव-प्रदां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।३।।
सर्वाश्रयां सर्व-जगन्निवासां, श्रीमत्-महा-लक्ष्मि ! सुरादि-देवीम् ।
शक्ति-स्वरूपां च शिव-स्वरूपां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।४।।
कामाभिधां त्वामधिवास-भूतां, ह्रीं-रूपिणींमन्मथ-बीज-युक्ताम् ।
कलाढ्य-बीजां परमार्थ-संज्ञां, रमां विशालां कमलाधिवासाम् ।।५।।
वैश्वानर-स्त्री-सहितेन देवीं, श्रीमन्त्र-राजेन विराजमानाम् ।
सर्वार्थ-दात्रीं परमां पवित्रां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।६।।
त्रिकोण-पञ्चार-युग-प्रभावां, षट्-कोण-मिश्रां द्वि-दशार-युक्ताम् ।
अष्टार-चक्राधि-निवास-भूतां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।७।।
पुनर्दशार-द्वितीयेन-युक्तां, पञ्चार-कोणाङ्कित-भू-गृहां च ।
यन्त्राधि-वासामपि यन्त्र-रूपां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।८।।
सम्भावितां सर्वदा न्यास-गम्यां, सर्व-स्वरूपामपि सर्व-सेव्याम् ।
सर्वाक्षर-न्यास-वशां वरिष्ठां, त्वां विश्व-योनिं शरणं प्रपद्ये ।।९।।

।। श्रीमहा-लक्ष्मी-सूक्तम् ।।

मध्यम चरितम्

।। द्वितीयोऽध्यायः ।।

महिषासुर-सैन्य-वधः

विनियोग-ॐ मध्यम-चरितस्य श्रीविष्णुर्ऋषिः । उष्णिक् छन्दः श्रीमहा-लक्ष्मीर्देवता । शाकम्भरी शक्तिः । दुर्गा बीजं । वायुस्तत्त्वं यजुर्वेदः स्वरूपं । श्री महा-लक्ष्मी - प्रीत्यर्थं मध्यम - चरित - पा विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास-श्रीविष्णु - ऋषये नमः शिरसि । उष्णिक्-छन्द नमः मुखे । श्री महा-लक्ष्मी-देवतायै नमः हृदि । शाकम्भरी-शक्तये नम नाभौ । दुर्गा-बीजाय नमः लिङ्गे । वायु-तत्त्वाय नमः गुह्ये । यजुर्वेद स्वरूपाय नमः पादौ । श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीत्यर्थे मध्यम-चरित-पा विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

।। श्रीमहा - लक्ष्मी - ध्यानम् ।।

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु-कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकाम् ।
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म-जलजं घण्टां सुरा-भाजनम् ।
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम् ।
सेवे सैरिभ-मर्दिनीमिह महा-लक्ष्मीं सरोज-स्थिताम् ।

।। ॐ ह्रीं मेधा ऋषिरुवाच ।।

देवासुरमभूद् युद्धं, पूर्णमब्द - शतं पुरा ।
महिषेऽसुराणामधिपे, देवानां च पुरन्दरे ।।१।
तत्रासुरैर्महा - वीर्यैर्देव - सैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ।।२।
ततः पराजिता देवाः, पद्म - योनिं प्रजा - पतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र, यत्रेश - गरुड़ - ध्वजौ ।।३।

।। देवा ऊचु ।।

यथा-वृत्तं तयोस्तद्-वन्-महिषासुर-चैष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभि - भव - विस्तरम् ।।४।।
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां, यमस्य वरुणस्य च ।
अन्येषां चाधिकारान् स, स्वयमेवाधि-तिष्ठति ।।५।।
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे, तेन देव-गणा भुवि ।
विचरन्ति यथा मर्त्या, महिषेण दुरात्मना ।।६।।
एतद् वः कथितं सर्वममरारि-विचेष्टितम् ।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो, वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ।।७।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

*श्रुत्वा तद् - वचनं विष्णुस्तानुवाच हसन्निव ।
युद्धं कृतं पुराऽस्माभिस्तथापि न मृतो ह्यासौ ।।८।।*

।। विष्णुरुवाच ।।

*अद्य सर्व - सुराणां वै, तेजोभी - रूप - सम्पदा ।
उत्पन्ना चेद् वरारोहा - सा हन्यात् तं रणे बलात् ।।९।।*
*हयारिं वर - दृप्तं च, माया - गत - विशारदम् ।
हन्तुं योग्या भवेन्नारी, शक्यं तैर्निर्मिता हि नः ।।१०।।*
*प्रार्थयन्तु च तेजोंऽशान्, स्त्रियोऽस्माकं तथा पुनः ।
उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंऽशैस्तेजो - राशिर्भवेद् यथा ।।११।।*
*आयुधानि वयं दद्मः, सर्वे रुद्र - पुरोगमाः ।
तस्यै सर्वाणि दिव्यानि, त्रिशूलादीनि यानि च ।।१२।।*
*सर्वायुध - धरा नारी, सर्व - तेजः - समन्विता ।
हनिष्यति दुरात्मानं, तं पापं मद - गर्वितम् ।।१३।।*

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

इत्थं निशम्य देवानां, वचांसि मध – सूदनः ।
चकार कोपं शम्भुश्च, भ्रकुटी – कुटिलाननौ ।।१४।
ततोऽति – कोप – पूर्णस्य, चक्रिणो वदनात् ततः ।
निश्चक्राम महत् – तेजो, ब्रह्मणः शङ्करस्य च ।।१५।
अन्येषां चैव देवानां, शक्रादीनां शरीरतः ।
निर्गतंसुमहत् – तेजस्तच्चैक्यं सम – गच्छत ।।१६।
अतीव – तेजसः कूटं, ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र, ज्वाला – व्याप्त – दिगन्तरम् ।।१७।
*रक्त–वर्णं शुभाकारं, पद्म – राग – मणि – प्रभम् ।
किञ्चिच्छीतं तथा चौष्णं, मरीचि–जाल–मण्डितम् ।।१८।।*
*निःसृतं हरिणा दृष्टं, हरेण च महात्मना ।
विस्मितौ तौ महा – राजौ, बभूवतुरुरु–क्रमौ ।।१९।।*
*शङ्करस्य शरीरात् तु, निःसृतं महदद्भुतम् ।
रक्त – वर्णमभूत् तीव्रं, दुर्दर्शं दारुणं महत् ।।२०।।*
*भयङ्करं च दैत्यानां, देवानां विस्मय – प्रदम् ।
घोर – रूपं गिरि – प्रख्यं, तमो – गुणमिवापरम् ।।२१।।*
*ततो विष्णु – शरीरात् तु, तेजो – राशिमिवापरम् ।
नीलं सत्त्व – गुणोपेतं, प्रादुरास महा – द्युतिः ।।२२।।*
*ततश्चेन्द्र – शरीरात् तु, चित्र – रूपं दुरासदम् ।
आविरासीत् सु – संवृत्तं, तेजः सर्व – गुणात्मकम् ।।२३।।*
*कुबेर – यम – वह्नीनां, शरीरेभ्यः समन्ततः ।
निश्चक्राम महत् – तेजो, वरुणस्य तथैव च ।।२४।।*

*अन्येषां चैव देवानां, शरीरेभ्योऽति – भास्वरम् ।
निर्गतं तन्महा – तेजो – राशिरासीन् महोज्ज्वलः ।।२५।।*
*तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे, देवा विष्णु – पुरोगमाः ।
तेजो – राशिं महा – दिव्यं, हिमाचलमिवापरम् ।।२६।।*
*पश्यतां तत्र देवानां, तेजः – पुञ्ज – समुद्भवा ।
बभूवाति – वरा नारी, सुन्दरी विस्मय – प्रदा ।।२७।।*
अतुलं तत्र तत् – तेजः, सर्वं – देव – शरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी, व्याप्त – लोक – त्रयं त्विषा ।।२८।।
*त्रिगुणा सा महा – लक्ष्मीः, सर्व – देव शरीरजा ।
अष्टादश – भुजा रम्या, त्रि–वर्णा विश्व–मोहिनी ।।२९।।*
*श्वेताननना कृष्ण – नेत्रा, संरक्ताधर – पल्लवा ।
ताम्र–पाणि–तला कान्ता, दिव्य–भूषण–भूषिता ।।३०।।*
*अष्टादश – भुजा देवी, सहस्र – भुज – मण्डिता ।
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।।३१।।
याम्येन चाभवन् केशा, बाहवो विष्णु – तेजसा ।
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं, मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् ।।३२।।
वारुणेन च जङ्घोरू, नितम्बस्तेजसा भुवः ।
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ, तदंगुल्योऽर्क – तेजसा ।।३३।।
वसूनां च करांगुल्यः, कौबेरेण च नासिका ।
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः, प्राजापत्येन तेजसा ।।३४।।
नयन – त्रितयं जज्ञे, तथा पावक – तेजसा ।
भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः, श्रवणावनिलस्य च ।।३५।।

अन्येषां चैव देवानां, सम्भवस्तेजसां शिवा ।
ततः समस्त-देवानां, तेजो-राशि-समुद्भवाम् ।।३६।।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ।
*स्वायुधेभ्यः समुत्पाट्य, तेजो-युक्तानि सत्वरा ।।३७।।
*ततो देवा दतुस्तस्यै, स्वानि स्वान्यायुधानि च ।
ऊचुर्जय जय तूच्चैर्जयन्ती च जयैषिणः ।।३८।।*
शूलं शूलाद् विनिष्कृष्य, ददौ तस्यै पिनाक - धृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः, समुत्पाद्य स्व-चक्रतः ।।३९।।
शङ्खं च वरुणः शक्तिं, ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं, बाण - पूर्णे तथेषुधी ।।४०।।
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य, कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्त्राक्षो, घण्टामैरावताद् गजात् ।।४१।।
काल - दण्डाद् यमो दण्डं, पाशं चाम्बु-पतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्ष - मालां, ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ।।४२।।
समस्त - रोम - कूपेषु, निज - रश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं, तस्याश्चर्म च निर्मलम् ।।४३।।
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडा-मणिं तथा दिव्यं, कुण्डले कटकानि च ।।४४।।
अर्ध - चन्द्रं तथा शुभ्रं, केयूरान् सर्व - बाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद् - वद्, ग्रैवेयकमनुत्तमम् ।।४५।।
अंगुलीयक - रत्नानि, समस्तास्वंगलीषु च ।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै, परशुं चाति - निर्मलम् ।।४६।।

अस्त्राण्यनेक – रूपाणि, तथाऽभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लान – पङ्कजा मालां, शिरस्युरसि चापराम् ।।४७।।
अददज्जलधिस्तस्यै, पङ्कजं चाति – शोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं, रत्नानि विविधानि च ।।४८।।
ददावशून्यं सुरया, पान – पात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्व – नागेशो, महा–मणि – विभूषितम् ।।४९।।
नाग – हारं ददौ तस्यै, धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवि, भूषणैरायुधैस्तथा ।।५०।।
सम्मानिता ननादोच्चैः, साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण, कृत्स्नमापूरितं नभः ।।५१।।
अमायतति – महता, प्रति – शब्दो महानभूत् ।
चुक्षुभुः सकला लोकाः, समुद्राश्च चकम्पिरे ।।५२।।
चचाल वसुधा चेलुः, सकलाश्च मही – धराः ।
जयेति देवाश्च मुदा, तामूचुः सिंह – वाहिनीम् ।।५३।।
सायुधां भूषणैर्युक्तां, दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः ।
तुष्टुवुर्मनयश्चैनां, भक्ति – नम्रात्म – मूर्त्तयः ।।५४।।

।। देवा उचुः ।।

*नमः शिवायै कल्याण्यै, शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः ।
भगवत्यै नमो देव्यै, रूद्राण्यै सततं नमः ।।५५।।*
काल – रात्र्यै तथाऽम्बायै, इन्द्राण्यै ते नमो नमः ।
सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै, वैष्णव्यै ते नमो नमः ।।५६।।*

*पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या, न ज्ञाता पृथिवीति च ।
अन्तः – स्थिता प्रेक्षति च, वन्दे तामीश्वरीं पराम् ।।५७।।*

*कल्याणं कुरु मे मातः ! त्राहि नः शत्रु–तापितान् ।
जहि पापं हयारिं त्वं, तेजसा स्वेन मोहितम् ।।५८।।*

*खलं मायाविनं घोरं, स्त्री – वश्यं वर – दर्पितम् ।
दुःखदं सर्व – देवानां, नाना – रूप – धरं शठम् ।।५९।।*

*त्वमेका सर्व – देवानां; शरणं भक्त – वत्सले !
पीडितान् दानवेनाद्य, त्राहि देवि ! नमोऽस्तु ते ।।६०।।*

।। मेधस ऋषिरुवाच ।।

*एवं स्तुता तदा देवी, सुरैः सर्व – सुख – प्रदा ।
तानुवाच महा – देवी, स्मित – पूर्वं शुभं वचः ।।६१।।*

।। देव्युवाच ।।

*भयं त्यजतु गीर्वाणा, महिषस्य मन्द – तेजसः ।
हनिष्यामि रणेऽद्यैव, वर – दृप्तं विमोहितम् ।।६२।।*

।। मेधस ऋषिरुवाच ।।

*जय कृत्वा स्मितं देवी, साट्टहासं चकार ह ।
उच्चैः शब्दं महा–घोरं, दानवानां भय – प्रदम् ।।६३।।*

*चकम्पे वसुधा तत्र, श्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम् ।
चेलुश्च पर्वताः सर्वे, चुक्षोभाब्धिश्च वीर्यवान् ।।६४।।*

*मेरुश्चचाल शब्देन, दिशः सर्व – प्रपूरिताः ।
भयं जग्मुस्तदा श्रुत्वा, दानवास्तं स्वनं महत् ।।६५।।*

*जयं पाहि तु देवास्तामुचुः परम – हर्षिताः ।
महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा, चुकोप मद – गर्वितः ।।६६।।*

*किमेतदेव ? तान् दैत्यान्, पपृच्छ स्वन – शङ्कितः ।
गच्छन्तु त्वरिता दूता, ज्ञातुं शब्द–समुद्भवम् ।।६७ ।।*

।। दूता ऊचुः ।।

*देवी दैत्येश्वर – प्रौढा, दृश्यते काचिदङ्गना ।
सर्वाङ्ग – भूषणा नारी, सर्व – रत्नोप – शोभिता ।।६८ ।।*
*न मानुषी नासुरी सा, दिव्य – रूप – मनोहरा ।
सिंहारूढाऽऽयुध – धरा, चाष्टादश – करा वरा ।।६९ ।।*
*सा नादं कुरुते नारी, लक्ष्यते मद गर्विता ।
सुरा–पान–रता कामं, जानीमो न स–भर्तृका ।।७० ।।*
*अन्तरिक्ष – स्थिता देवा, तां स्तुवन्ति मदान्विताः ।
द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत् – तेजः – परि–घर्षिताः ।।७१ ।।*

।। महिष उवाच ।।

*गच्छ वीर ! मयाऽऽदिष्टो, मन्त्रि–श्रेष्ठ ! बलान्वित ! ।
सामादिभिरुपायैस्त्वं, समानय शुभाननाम् ।।७२ ।।*

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

*महिषस्य वचः श्रुत्वा, पेशलं मन्त्रि – सत्तमः ।
गत्वा दूर – तरं स्थित्वा, तामुवाच मनस्विनीम् ।।७३ ।।*

।। महिष – मन्त्री उवाच ।।

*काऽसी त्वं मधुरालापे !, किमित्रागमनं कृतम् ? ।
पृच्छति त्वां महा – भागे !, मन्मुखेन मम प्रभुः ।।७४ ।।*
*स जेता सर्व – देवानामनश्यं तु नरैः किल ।

द्रष्टुमिच्छति राजा मे, महिषो नाम पार्थिवः ।।७५।।*

*वशगोऽसौ तवात्यर्थं, रूप – संश्रवणात् तव ।
करभोरु ! वदाऽऽशु त्वं, संविधेयं मया यथा ।।७६।।*

।। देव्युवाच ।।

*मन्त्रि – वर्य ! सुराणां वै, जननीं विद्धि मां किल ।
श्रीमहा–लक्ष्मीं विख्यातां, सर्व–दैत्य–निषूदिनीम् ।।७७।।*

*प्रार्थिताऽहं सुरैः सर्वैः, महिषस्य क्षयाय च ।
तस्मादिहागताऽस्म्यद्य, तद् – नाशाय कृतोद्यमा ।।७८।।*

*मधवा स्वर्गमाप्नोतु, देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं, यदि जीवितुमिच्छथ ।।७९।।*

।। महिष – मन्त्री उवाच ।।

*राजन् ! देवी वरारोहा, सिंहस्योपरि – संस्थिता ।
अष्टादश – भुजा रम्या, वरायुत – धरा परा ।।८०।।*

*सा मयोक्ता महाराज !, महिषं भज भामिनि !
महिषी भव राज्ञस्त्वं, त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया ।।८१।।*

*एवं मद् – वचनं श्रुत्वा, सा स्मयावेश – मोहिता ।
मामुवाच विशालाक्षी, स्मित – पूर्वमिदं वचः ।।८२।।*

*करिष्येऽहं मृधे युद्धं, हनिष्ये त्वां सुराप्रियम् ।
गच्छ वा दुष्ट ! पातालं, जीवितेच्छा यदस्ति ते ।।८३।।*

।। महिष उवाच ।।

*गच्छ ताम्र ! महा–भाग!, युद्धाय कृत–निश्चयः ।

तामानय वरारोहां, जित्वऽधर्मेण मानिनीम् ।।८४।।*

।। मेधा ऋषिरुवाचय ।।

*एवं तद् – भाषितं श्रुत्वा, ताम्रः काल – वशं गतः ।
निर्गतः सैन्य – संयुक्तः, प्रणम्य महिषं नृपम् ।।८५।।
*स गत्वा तां समालोक्य, देवीं सिंहोपरि – स्थिताम् ।
स्तूयमानां सुरैः सर्वैः, सर्वायुध – विभूषिताम् ।।८६।।*
*तामुवाच विनीतः सन्, वाक्यं मधुरया गिरा ।
देवि ! दैत्येश्वरः शृङ्गी–स्वरूप – गुण–मोहितः ।।८७।।*
*स्पृहां करोति महिषस्त्वत् – पाणि – ग्रहणाय वै ।
भुंक्ष्व राज्य – सुखं पूर्णं, वर्षाणामयुतायुतम् ।।८८।।*

।। देव्युवाच ।।

*गच्छ ताम्र ! पतिं ब्रूहि, मुमुर्षुं मद – चेतसम् ।
महिषं चाति – कामार्तं, मूढं ज्ञान–विवर्जितम् ।।८९।।*
*नाऽहं पतिं–वरा नारी, वर्तते मे पतिः प्रभुः ।
सर्व–कर्त्ता सर्व–साक्षी, ह्यकर्त्ता निःस्पृहः स्थिरः ।।९०।।*
*तं त्यक्त्वा महिषं मत्तं, कथं सेवितुमुत्सहे ?
जीवितेच्छाऽस्ति चेत् पाप ! गच्छ पातालमाशुवै ।।९१।।*

।। मेधा ऋषिरुवाचय ।।

*उक्त्वैवं सा तदा देवी, जगर्ज भृशमद्भुतम् ।
कल्पान्त – सदृशं नादं, चक्रे दैत्य – भयावहम् ।।९२।।*
*ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं, भय–त्रस्त – मनास्तदा ।
पलायनं ततः कृत्वा, जगाम महिषान्तिकम् ।।९३।।*

ताम्रं समागतं दृष्ट्वा, हयारिरपि मोहितः ।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं, त्रैलोक्यममरारयः ।।९४।।
सन्नद्धाखिल – सैन्यास्ते, समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ।।९५।।
अभ्यधावत तं शब्दमशेषेरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं, व्याप्त – लोक – त्रयां त्विषा ।।९६।।
पादाक्रान्त्या नत – भुवं, किरीटो ल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेष–पातालां, धनुर्ज्या–निःस्वनेन ताम् ।।९७।।
दिशो भुज– सहस्त्रेण, समन्ताद् व्याप्त संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं, तया देव्या सुर – द्विषाम् ।।९८।।
शास्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपित – दिगन्तरम् ।
महिषासुर – सेनानीश्चिक्षुराख्यो महाऽसुरः ।।९९।।
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्ग – बलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महाऽसुरः ।।१००।।
अयुध्यतायुतानां च, सहस्रेण महा – हनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महाऽसुरः ।।१०१।।
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।
गज – वाजि – सहस्त्रौघैरनेकैः परिवारितः ।।१०२।।
वृतो रथानां कोट्या च, युद्धे तस्मिन्नयुध्यतः ।
बिडालाख्योऽयुतानां च, पञ्चाशद्भि रथायुतैः ।।१०३।।
युयुधे संयुगे तत्र, रथानां परिवारितः ।
अन्ये च तत्रायुतशो, रथ – नाग – हयैवृताः ।।१०४।।
युयुधुः संयुगे देव्या, सह तत्र महाऽसुराः ।
कोटि – कोटि – सहस्त्रैस्तु, रथानां दन्तिनां तथा ।।१०५।।
हयानां च वृतो युद्धे, तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च, शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ।।१०६।।

युयुधः संयुगे देव्याः, खड्गै परशु – पट्टिशैः ।
केचिच्चचिक्षिपुः शक्तीः, केचित् पाशांस्तथाऽपरे ।।१०७।।
देवीं खड्ग – प्रहारैस्तु, ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
साऽपि देवी ततस्तानि, शास्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ।।१०८।।
लीलयैव प्रचिच्छेद, निज – शस्त्रास्त्र – वर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी, स्तूयमाना सुरर्षिभिः ।।१०९।।
मुमोचासुर – देहेषु, शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुत – सटो, देव्या वाहन – केसरी ।।११०।।
चचारासुर – सैन्येषु, वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च, युध्यमाना रणेऽम्बिका ।।१११।।
त एव सद्यः सम्भूता, गणाः शत – सहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासि – पट्टिशैः ।।११२।।
नाशयन्तोऽसुर – गणान्, देवी–शक्त्युप – बृंहिताः ।
अवादयन्तः पटहान्, गणाः शङ्खांस्तथाऽपरे ।।११३।।
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये, तस्मिन् युद्ध – महोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन, गदया शक्ति – वृष्टिभिः ।।११४।।
खड्गादिभिश्च शतशो, निजघान महाऽसुरान् ।
पातयामास चैवान्यान्, घण्टा–स्वन–विमोहितान् ।।११५।।
असुरान् भुवि पाशेन, बद्धवा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः, खड्ग–पातैस्तथाऽपरे ।।११६।।
विपोथिता निपातेन, गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद् रूधिरं, मुसलेन भृशं हताः ।।११७।।
केचिन्निपतिता भूमौ, भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण, कृताः केचिद् रणाजिरे ।।११८।।

श्येनानुकारिणः प्राणान्, मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषाञ्चिद्, बाहवश्छिन्नाश्चिन्न – ग्रीवास्तथाऽपरे ।।११९।।
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्न–जङ्घास्त्वपरे, पेतुरुर्व्यां महाऽसुराः ।।१२०।।
एक–वाह्वक्षि–चरणाः, केचिद् देव्या द्विधा कृताः ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि, पतिताः पुनरुत्थिताः ।।१२१।।
कबन्धाश्छिन्न–शिरसः, खड्ग–शक्त्यृष्टि–पाणयः ।
ननृतुश्चापरे तत्र, युद्धे तूर्य – लयाश्रिताः ।।१२२।।
कबन्धा युयुधुर्देव्या, गृहीत – परमायुधाः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो, देवीमन्ये महाऽसुराः ।।१२३।।
पातितै रथ – नागाश्चैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साऽभवत् तत्र, यत्राभूत् स महा–रणः ।।१२४।।
शोणितौघा महा – नद्यः, सद्यस्तत्र – प्रसुस्रुवुः ।
मध्ये चासुर – सैन्यस्य,वारणासुर – वाजिनाम् ।।१२५।।
क्षणेन तन्महा – सैन्यमसुराणां तथाऽम्बिका ।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृण – दारु – महा–चयम् ।।१२६।।
स च सिंहो महा – नादमुत् – सृजन् – धुत – केशरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ।।१२७।।
देव्या गणैश्च तैस्तत्र, कृतं युद्धं महाऽसुरैः ।
यथैषां तुतुषुर्देवाः, पुष्प–वृष्टि–मुचो दिवि ह्रीं ॐ ।।१२८।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय–उत्तर–पुराणे सवार्णिके मन्वन्तरे देवी– महात्म्ये सत्या सन्तु । (यजमानस्य कामा) जगदम्बाऽर्पणमस्तु ।

।। तृतीयोऽध्यायः ।।

महिषासुर-वधः

।। ध्यान ।।

ॐ उद्यद्-भानु-सहस्त्र-कान्तिमरुण-क्षौमां शिरो - मालिकाम् ।
रक्तालिप्त - पयोधरां जप - वटीं विद्यामभीतिं वरम् ।।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्र - विलसद् - वक्त्रारविन्द - श्रियम् ।
देवीं बद्ध - हिमांशु - रत्न - मुकुटां वन्देऽरविन्द - स्थिताम् ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

निहन्यमानं तत् - सैन्यमवलोक्य महाऽसुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्, ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ।।१।।
स देवीं शर - वर्षेण, ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरु-गिरेः शृङ्गं, तोय - वर्षेण तोयदः ।।२।।
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी, लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् वाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ।।३।।
चिच्छेद च धनुः सद्यो, ध्वजं चाति - समुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु, छिन्न - धन्वानमाशुगैः ।।४।।
सच्छिन्न - धन्वा विरथो, हताश्वो हत - सारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं, खड्ग - चर्म - धरोऽसुरः ।।५।।
सिंहमाहत्य खड्गेन, तीक्ष्ण - धारेण मूर्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये, देवीमप्यति - वेग - वान् ।।६।।

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य, पफाल नृप–नन्दन !
ततो जग्राह शूलं स, कोपादरुण – लोचनः ।।७।।

चिक्षेप च ततस्तत् तु, भद्र – काल्यां महाऽसुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी, रवि–बिम्बमिवाम्बरात् ।।८।।

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं, देवी शूलममुञ्चत ।
तच्छूलं शतधा तेन, नीतं स च महाऽसुरः ।।९।।

हते तस्मिन् महा – वीर्ये, महिषस्य चमू–पतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ।।१०।।

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ, देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुङ्काराभिहतां भूमौ, पातयामास निष्प्रभाम् ।।११।।

भग्नां शक्तिं निपतितां, दृष्ट्वा क्रोध – समन्वितः ।
चिक्षेप चामरः शूलं, बाणैस्तदपि साऽच्छिनत् ।।१२।।

ततः सिंहः समुत्पत्य, गज–कुम्भान्तरे स्थितः ।
बाहु – युद्धेन युयुधे, तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ।।१३।।

युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु, तस्मान्नागान् महीं गतौ ।
युयुधातेऽति – संरब्धौ, प्रहारैरति – दारुणैः ।।१४।।

ततो वेगात् खमुत्पत्य, निपत्य च मृगारिणा ।
कर – प्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक – कृतम् ।।१५।।

उदग्रश्च रणे देव्या, शिला – वृक्षादिभिर्हतः ।
दन्त–मुष्टि – तलेश्चैव, करालश्च निपातितः ।।१६।।

देवी क्रुद्धा गदा – पातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन, बाणैस्ताम्रं तथाऽन्धकम् ।।१७।।

उग्रास्यमुग्र – वीर्यं च, तथैव च महा – हनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन, जघान परमेश्वरी ।।१८।।

विडालस्यासिना कायात्, पातयामास वै शिरः ।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ, शरैर्निन्ये यम – क्षयम् ।।१९।।
*हाहा – कारो महानासीत्, सैन्ये तस्य दुरात्मनः ।
चुक्रुशू रुरुदुश्चैव, त्राहि त्राहि तु भाषणैः ।।२०।।*
*अन्ये ये सैनिका राजन् !, सिंहेन भक्षिताश्च ते ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां, महिषो दुर्मनास्तदा ।।२१।।*
*तेषां तद् – वचनं श्रुत्वा, क्रोध – युक्तो नराधिपः ।
दारुकं प्राह तरसा, रथमानय मेऽद्भुतम् ।।२२।।*
*सहस्र – खर – संयुक्तं, पताका – ध्वज – भूषितम् ।
आयुधैः संयुतं शुभ्रं, सु – चक्रं चारु – कूबरम् ।।२३।।*
*आनीतं तं रथं ज्ञात्वा, दानवेन्द्रो महा – बलः ।
सर्वायुध – समायुक्तो, वरास्तरण – संयुतः ।।२४।।*
*मानुषं देहमास्थाय, संग्रामे गन्तुमुद्यतः ।
त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं, बभूव पुरुषः शुभः ।।२५।।*
*दिव्याम्बर – धरः कान्तः, पुष्प – वाण इवापरः ।
तमायान्तं समालोक्य, दैत्यानामधिपं तदा ।।२६।।*
*बहुभिः संवृतं वीरैर्देवि शङ्खमवादयत् ।
समीपमेत्य देव्यास्तु, तामुवाच हसन्निव ।।२७।।*

।। महिष उवाच ।।

*देवि! संसार – चक्रेऽस्मिन्, वर्तमाने जनः किल ।
नरो वाऽथ तथा नारी, सुखं वाञ्छति सर्वथा ।।२८।।*
*नारी – पुरुषयोः कान्ते!, समान – वयसोः सदा ।
संयोगो यः समाख्यातः, स एवात्युत्तमः स्मृतः ।।२९।।*

*तं चेत् करोसि संयोगं, वीरेण च मया सह ।
अत्युत्तम-सुखस्यैव, प्राप्तिः स्यात् ते न संशयः ।।३०।।*
*इन्द्रादयः सुरा सर्वे, संग्रामे विजिता मया ।
रत्नानि यानि दिव्यानि, भवनेऽस्मिन् ममाधुना ।।३१।।*
*भुङ्क्ष्व त्वं तानि सर्वाणि, यथेष्टं देहि वा यथा ।
पट्ट-राज्ञी भवाद्य त्वं, दासोऽस्मि तव सुन्दरि! ।।३२।।*

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

*एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं, देवी भगवती हि सा ।
प्रहस्य स-स्मितं वाक्यमुवाच वर-वर्णिनी ।।३३।।*

।। देव्युवाच ।।

*नाहं पुरुषमिच्छामि, परमं पुरुषं विना ।
तस्य चेच्छाम्यहं दैत्य!, सृजामि सकलं जगत् ।।३४।।*
*स मां पश्यति विश्वात्मा, तस्याऽहं प्रकृतिः शिवा ।
मूर्खस्त्वमसि मन्दात्मन् !, यत्-स्त्री-सङ्गं चिकीर्षसि ।।३५।।*
*नरस्य बन्धनार्थाय, शृङ्खला स्त्री प्रकीर्तिता ।
नारी-सङ्गे महद्-दुःखं, जानन् किं त्वं विमुह्यसि? ।।३६।।*
*त्यज वैरं सुरैः सार्धं, यथेष्टं विचरावनौ ।
पातालं गच्छ वा कामं, जीवितेच्छा यदास्ति ते ।।३७।।*
*अथवा कुरु संग्रामं, बलवत्यस्मि साम्प्रतम् ।
प्रेषिताऽहं सुरैः सर्वैस्तव नाशाय दानव! ।।३८।।*
*हनिष्यामि महा - वाहो !, त्वामहं नात्र संशयः ।

।। ऋषिरुवाच ।।

*उत्तस्तु स तया देव्या, धनुरादाय दानवः ।
(मुमोच तरसा बाणान्, कर्णाकृष्टाञ्छिलाशितान्) ।
देवी चिच्छेद तान् वाणैः, क्रोधान्मुक्तैरयो-मुखैः ।।३९।।*

*तयोः परस्परं युद्धं, सम्बभूव भय - प्रदम् ।
स पदाति - रथं सैन्यं, देव्या सिंहेन नाशितम् ।।४०।।*

एवं संक्षीयमाणे तु, स्व - सैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण, त्रासयामास तान् गणान् ।।४१।।

कांश्चित् तुण्ड - प्रहारेण, खुर - क्षेपैस्तथाऽपरान् ।
लांगूल-ताडितांश्चान्यान्, शृङ्गाभ्यां च विदारितान् ।।४२।।

वेगेन कांश्चिदपरान्, नादेन भ्रमणेन च ।
निःश्वास - पवनेनान्यान्, पातयामास भू-तले ।।४३।।

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ।
सिंहं हन्तुं महा-देव्याः, कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ।।४४।।

सोऽपि कोपान्महा-वीर्यः, खुर-क्षुण्ण-मही-तलः ।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ।।४५।।

वेग - भ्रमण - विक्षुण्णा, मही तस्य व्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतः साब्धिः, प्लावयमास सर्वतः ।।४६।।

धुत - शृङ्ग - विभिन्नाश्च, खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो, निपेतुर्नभसोऽचलाः ।।४७।।

इति क्रोध - समाध्मातमापतन्तं महाऽसुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं, तद्-वधाय तदाऽकरोत् ।।४८।।

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं, तं बबन्ध महाऽसुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं, सोऽपि बद्धो महा - मृधे ।।४९।।

ततः सिंहोऽभवत् सद्यो, यावत् तस्याम्बिका शिरः ।
छिनत्ति तावत् पुरुषः, खड्ग – पाणिरदृश्यत ।।५०।।
तत एवाशु पुरुषं, देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्ग–चर्मणा सार्धं, ततः सोऽभून् महा–गजः ।।५१।।
करेण च महा – सिंहं, तं चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी, खड्गेन निरकृन्तत ।।५२।।
ततो महाऽसुरो भूयो, माहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास, त्रैलोक्यं स – चराचरम् ।।५३।।
ततः क्रुद्धा जगन्माता, चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव, जहासारुण – लोचना ।।५४।।
ननर्द चासुरः सोऽपि, बल – वीर्य – महोद्धतः ।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप, चण्डिकां प्रति भूधरान् ।।५५।।
सा च तान् प्रहितांस्तेन, चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
उवाच तं मदोद्धूत – मुख – रागाकुलाक्षरम् ।।५६।।

।। देव्युवाच ।।

मा गर्वं कुरु मन्दात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ रणाङ्गणे ।
करिष्यामि निरातङ्कान्, हत्वा त्वां सुर–सत्तमान् ।।५७।।*
गर्ज गर्ज क्षणं मूढ!, मधु यावत पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव, गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ।।५८।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

*उक्त्वैवं चषकं हैमं, गृहीत्वा सुरया युतम् ।
पपौ पुनः पुनः क्रोधाद्धन्तु–कामा महाऽसुरम् ।।५९।।*

एवमुक्त्वा समुत्पत्य, साऽऽरूढा तं महाऽसुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च, शूलेनैनमताडयत् ।।६०।।

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निज-मुखात् ततः ।
अर्ध-निष्क्रान्त एवासीद्, देव्या वीर्येण संवृतः ।।६१।।

अर्ध - निष्क्रान्त एवासौ, युद्ध्यमानो महाऽसुरः ।
तया महाऽसिना देव्या, शिरश्छित्वा निपातितः ।।६२।।

ततो हाहा - कृतं सर्वं, दैत्य - सैन्यं ननाश तत् ।
प्रहर्षं च परं जग्मुः, सकला देवता - गणाः ।।६३।।

*एवं स महिषो नाम, स-सैन्यः स-सुहृद्-गणः ।
त्रैलोक्यं मोहयित्वा तु, तया देव्या निपातितः ।।६४।।

*त्रैलोक्यस्थैस्तदा भूतैर्महिषे विनिपातिते ।
जयतूक्तं वचं सर्वे, स - देवा सुर - मानुषैः ।।६५।।

तुष्टुवुस्तां सुरा - देवीं, सह दिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गन्धर्व - पतयो, ननृतुश्चाप्सरो - गणाः ।।६६।।

ॐ जय जय श्री मार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्या सन्तु । (यजमानस्य कामा) जगदम्बाऽर्पणमस्तु ।

।। चतुर्थोऽध्यायः ।।

शक्रादि-स्तुति

।। ध्यानम् ।।

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररि-कुल-भयदां मौलि-बद्धेन्दु-रेखां,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।
सिंह - स्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदश-परिवृतां सेवितां सिद्धि-कामैः ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

*अथ प्रमुदिताः सर्वे, देवा इन्द्र - पुरोगमाः ।
स्तुतिमारभिरे कर्तुं, निहते महिषासुरे ।।१।।*

शक्रादयः सुर - गणा निहतेऽति - वीर्ये,
तस्मिन् दुरात्मनि सुरारि - बले च देव्या ।
तां तुष्टवुः प्रणति - नम्र - शिरोधरांसा,
वाग्भिः प्रहर्ष-पुलकोद्गम-चारु-देहाः ।।२।।

।। देवा ऊचुः ।।

देव्या यया ततमिदं जगदात्म - शक्त्या,
निश्शेष-देव-गण-शक्ति-समूह-मूर्त्या ।
तामम्बिकामखिल - देव - महर्षि - पूज्याम्,
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ।।३।।

यस्याः प्रभावमतुलं भगवानन्तो,
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।

सा चण्डिकाऽखिल – जगत् – परिपालनाय,
नाशाय चाशुभ – भयस्य मतिं करोतु ।।४।।
या श्रीः स्वयं सु – कृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः,
पापात्मनां कृत – धियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुल – जन – प्रभवस्य लज्जा,
तां त्वां नताः स्म परि – पालय देवि! विश्वम् ।।५।।
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्,
किं चाति – वीर्यमसुर – क्षय – कारि भूरि ।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि,
सर्वेषु देव्यसुर – देव – गणादिकेषु ।।६।।
हेतुः समस्त – जगतां त्रिगुणाऽपि दोषै–
र्न ज्ञायसे हरि – हरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंश – भूत–
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ।।७।।
यस्याः समस्त – सुरता समुदीरणेन,
तृप्तिं प्रयान्ति सकलेषु मखेषु देवि! ।
स्वाहाऽसि वै पितृ – गणस्य च तृप्ति–हेतु–
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ।।८।।
या मुक्ति – हेतुरविचिन्त्य – महा–व्रता त्व–
मभ्यस्यसे सु–नियतेन्द्रिय–तत्त्व–सारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त – समस्त – दोषै–
र्विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवि ।।९।।
शब्दात्मिका सु – विमलर्ग्यजुषां निधान–

मुद्गीथ-रम्य-पद-पाठ-वतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भव - भावनाय,
वार्त्ता च सर्व - जगतां परमार्ति - हन्त्री ।।१०।।
मेधाऽसि देवि! विदिताऽखिल - शास्त्र - सारा,
दुर्गाऽसि दुर्ग - भव - सागर - नौर - सङ्गा ।
श्रीः कैटभारि - हृदयैक - कृताधिवासा,
गौरी त्वमेव शशि - मौलि - कृत - प्रतिष्ठा ।।११।।
ईषत् - स - हासममलं परि - पूर्ण - चन्द्र -
बिम्बानुकारि कनकोत्तम-कान्ति-कान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहमात्त - रुषा तथापि,
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ।।१२।।
दृष्ट्वा तु देवि! कुपितं भ्रुकुटी - कराल -
मद्यच्छशाङ्क - सदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान् मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं,
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तक - दर्शनेन ।।१३।।
देवि! प्रसीद परमा भवती भवाय,
सद्यो विनाशयसि कोप - वती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यतस्तमेत-
न्नीतं बलं सु - विपुलं महिषासुरस्य ।।१४।।
ते सम्मता जन - पदेषु धनानि तेषां,
तेषां यशांसि न च सीदति धर्म - वर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मज - भृत्य - दारा,
येषां सदाऽभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ।।१५।।
धर्म्याणि देवि! सकलानि सदैव कर्मा -

ण्यत्यादृतः प्रति – दिनं सु – कृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती – प्रसादा –
ल्लोक – त्रयेऽपि फलदा ननु देवि! तेन ।।१६।।
दुर्गे! स्मृता हरसि भीतिमशेष – जन्तोः,
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव – शुभां ददासि ।
दारिद्र्य – दुःख – भय – हारिणी ! का त्वदन्या,
सर्वोपकार – करणाय सदाऽऽर्द्र – चित्ता ।।१७।।
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते,
कुर्वन्तु नाम नरकार चिराय पापम् ।
संग्राम – मृत्युमधि – गम्य दिवं प्रयान्तु,
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि! ।।१८।।
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म,
सर्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्र – पूता,
इत्थं! मतिर्भवति तेष्वपि तेऽति – साध्वी ।।१९।।
खड्ग – प्रभा – निकर – विस्फुरणैस्तथोग्रैः,
शूलाग्र – कान्ति – निवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दु – खण्ड –
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ।।२०।।
दुर्वृत्त – वृत्त – शमनं तव देवि! शीलं,
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृत – देव – पराक्रमाणाम्,
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ।।२१।।
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य,

रूपं च शत्रु – भय – कार्यति – हारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समय – निष्ठुरता च दृष्टा,
त्वय्येव देवि! वरदे! भुवन – त्रयेऽपि ।।२२।।
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपु – नाशनेन,
त्रातं त्वया समर – मूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपु – गणा भयमप्यपास्त –
मस्माकमुन्मद – सुरारि – भवं नमस्ते ।।२३।।
*ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः,
शक्त्या तवैव हरते ननु चान्त – काले ।
ईशा न तेऽपि च भवन्ति त्वया विहीनास्तस्मात्
त्वमेव जगतः स्थिति – नाश – कर्त्री ।।२४।।*
*कीर्तिर्मतिः स्मृति – गती करुणा दया त्वं,
श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमलालया च ।
पुष्टिः कलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वं,
तुष्टिः प्रभा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च ।।२५।।*
*विद्या क्षमा जगति कान्तिरपीह मेधा,
सर्वं त्वमेव विदिता भुवन – त्रयेऽस्मिन् ।
आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं,
को वा क्षमः सकल–लोक–निवास–भूमौ ।।२६।।*
*त्वं धारणा ननु न चेदसि कूर्म – नागौ,
धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम् ।
पृथ्वी न चेत् त्वमसि वा गगने कथं,
स्थास्यत्येतदम्ब! निखिलं बहु – भार – युक्तम् ।।२७।।
*ये वा स्तुवन्ति मनुजा अमरान् विमूढा,

माया – गुणैस्तव चतुर्मुख – विष्णु – रुद्रान ।
शुभ्रांशु – वह्नि – यम – वायु – गणेश – मुख्यान्,
किं त्वामृते जननि! ते प्रभवन्ति कार्ये ।।२८।।
*ये जुह्वति प्रवितवैल्प – धियोऽम्ब! यज्ञे,
वह्नौ सुरान् समधि – कृत्य हविः समिद्धम् ।
स्वाहा न चेत् त्वमसि ते कथमापुरद्धा,
त्वामेव किं नहि यजन्ति सतो हि मूढ़ाः ।।२९।।*
*भोग – प्रदाऽसि भवतीह चराचराणाम्,
स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम् ।
स्वीयान् सुरान् जननि ! पोषयसीह यद् – वत्,
तद्–वदूपरानपि च पालयसि सु – हेतोः ।।३०।।*
*चित्रं त्वमीयदसुभी रहिता न सन्ति,
त्वच्चित्तितेन दनुजाः प्रथित – प्रभावाः ।
येषां कृते जननि! देह – निबन्धनं ते,
क्रीडा – रसस्तव न चान्य – तरोऽत्र हेतुः ।।३१।।*
*विद्या त्वमेव सुखदाऽसुरदाऽप्यविद्या,
मातस्त्वमेव जननार्ति – हरा नराणाम् ।
मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मन्द – धीभि –
र्नाराधिता जननि! भोग – परैस्तथाऽज्ञैः ।।३२।।*

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः, कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री, तथा गन्धानुलेपनैः ।।३३।।
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।

प्राह प्रसाद-सुमुखी, समस्तान् प्रणतान् सुरान् ।।३४।।

।। देव्युवाच ।।

ब्रियतां त्रिदशाः सर्वे, यदस्मत्तोऽभि-वाञ्छितम् ।
तत् तु ददाम्यहं प्रीत्या, स्तवैरेभिः सु-पूजिता ।।३५।।

।। देवा ऊचुः ।।

भगवत्या कृतं सर्वं, न किञ्चिदवशिष्यते ।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।।३६।।

यदि चापि वरो देयस्त्वयाऽस्माकं महेश्वरि! ।
(संस्मृता संस्मृता त्वं नो, हिंसेथा परमापदः)
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने! ।।३७।।

तस्य वित्तर्द्धि-विभवैर्धन-दारादि-सम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्-प्रसन्ना त्वं, भवेथाः सर्वदाऽम्बिके! ३८।।

।। मेधस ऋषिरुवाच ।।

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्र-काली, बभूवाऽन्तर्हिता नृप! ।।३९।।

इत्येतत् कथितं भूप !, सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देव-शरीरेभ्यो, जगत्-त्रय-हितैषिणी ।।४०।।

पुनश्च गौरी-देहात् सा, समुद्भूता यथाऽभवत् ।
वधाय दुष्ट-दैत्यानां, तथा शुम्भ-निशुम्भयोः ।।४१।।

रक्षणाय च लोकानां, देवानामुप - कारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं, यथावत् कथयामि ते ॐ ।।४२।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर पुराणे सवार्णिके मन्वन्तरे देवी-माहात्म्ये सत्या सन्तु । (यजमानस्य कामा) जगदम्बार्पणमस्तु ।

महा-सरस्वती-सूक्तम्

।। ब्रह्मोवाच ।।

अजां पुराणीममरां सनातनीं, चतुर्भुजां पुस्तकमक्ष - धारिणीं ।
वराभयाभ्यामनुशोभि-हस्तां, नमामि तां जाड्य-जरा-विनाशिनीम् ।।१।।
सरस्वतीं तामनुनौमि वाचं, वचः- प्रदां हंस- वराधिरूढाम् ।
मुक्ता-मणि-द्योतित-कण्ठ-हारां, भाग्यैक-लभ्यां परमां पवित्राम् ।।२।।
श्रीकण्ठ - शक्ति - त्रय - शोभमानां, दशार - तूर्येण कृतानुरूपाम् ।
पञ्चार - वासोभृत - भू - गृहारं, सरस्वतीं तां प्रणमामि देवीम् ।।३।।
कलाढ्य-यन्त्रां मणि-कोटि-हारां, विहार-यन्त्रां विमलैक-शोभाम् ।
स्वच्छां चिदाभां स्फटिकानुरूपां, सरस्वतीं त्वां प्रणमामि मातः ! ।।४।।
वाक्-काम-कामैः परमैः पवित्रैः, स्मरामि त्वां ह्रीं वरदान-दक्षाम् ।
वीजैरमीभिः कपि-बीज-युक्तैः, क्लीं-युग्म-मिश्रैरिति मन्त्र-राजः ।।५।।
आत्मा मनस्त्वं त्वमिहासि देहो, त्वमेव पञ्चेन्द्रिय-पञ्च-तत्त्वम् ।
त्वमेव वै विषयाः शब्द - मुख्या, परा परेशी परमा त्वमेव ।।६।।
ॐ रविश्च ते चन्द्रमाश्च ते तारकाश्च ते भूश्च ते जलं च ते तेजश्च ।
ते वायुश्च ते व्योमं च ते शब्दश्च ते स्पर्शश्च ते रूपं च ते ।।७।।
रसश्च ते गन्धश्च ते श्रोत्रं च ते त्वक् च ते चक्षुश्च ते रसना च ते घ्राणं च ते ।
प्राणश्च ते अपानश्च ते व्यानश्च ते उदानश्च ते समानश्च ते नागश्च ते कूर्मश्च ते ।।८।।
कृकरश्च ते देवदत्तश्च ते धनञ्जयश्च ते, भूतात्मा च ते परमात्मा च ते ।
ज्ञानात्मा च ते सर्वात्मा ते, मम चित्तं त्वय्येव विनिवेश्यताम् ।।९।।
कालास्त्वमेवासि जग-त्रयाणां, स्वभाव - तुर्यादि-कला त्वमेव ।
त्वमेव विश्वं च परमात्म - शक्तिः, नमामि ते पाद-युगं च देवि! ।।१०।।
त्वमेव वाणि निखिलाश्च वेदास्त्वं, शब्द-शक्तिश्च तथार्थ-शक्तिः ।
त्वं ब्रह्म - विद्याऽपि परा - परेशि !, त्वं ब्रह्म - शक्तिं शरणं प्रपद्ये ।।११।।

उत्तम चरितम्

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

शुम्भ-निशुम्भ-वधः

विनियोग - ॐ उत्तम-चरितस्य श्रीरुद्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्री महा-सरस्वती देवता । भीमा शक्तिः । भ्रामरी बीजं । सूर्यः तत्त्वं । साम-वेदः स्वरूपं । श्रीमहा-सरस्वती-प्रीत्यर्थं उत्तम-चरित-पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास-श्रीरुद्र-ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे । श्रीमहा-सरस्वती-देवतायै नमः हृदि । भीमा-शक्तये नमः नाभौ । भ्रामरी-बीजाय नमः लिङ्गे । सूर्य-तत्त्वाय नमः गुह्ये । साम-वेद-स्वरूपाय नमः पादौ । श्रीमहा-सरस्वती-प्रीत्यर्थे उत्तम-चरित-पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

॥ श्री महा-सरस्वती-ध्यानम् ॥

घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः सायकम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं घननान्त-विलसच्छीतांशु-तुल्य-प्रभाम् ॥
गौरी-देह-समुद्भवां त्रि-जगतामाधार-भूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनु-भजे शुम्भादि-दैत्यार्दिनीम् ॥

॥ ॐ क्लीं मेधा ऋषिरुवाच ॥

पुरा शुम्भ-निशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शची-पतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञ-भागश्च, हृता मद-बलाश्रयात् ॥१॥
तावेव सूर्यतां तद् वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च, चक्राते वरुणस्य च ॥२॥

तावेव पवनर्द्धिं च, चक्रतुर्वह्नि – कर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता, भ्रष्ट–राज्याः पराजिताः ।।३।।
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महाऽसुराभ्यां तां देवी, संस्मरन्त्यपराजिताम् ।।४।।
तयाऽस्माकं वरो दत्तो, यथाऽऽपत्सु स्मृताऽखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि, तत्–क्षणात् परमापदः ।।५।।
इति कृत्वा मतिं देवा, हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं, विष्णु–मायां प्रतुष्टुवुः ।।६।।

।। देवा ऊचुः ।।

नमो देव्यै महा – देव्यै, शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम् ।।७।।
रौद्रायै नमो नित्यायै, गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दु–रूपिण्यै, सुखायै सततं नमः ।।८।।
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै, सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै, शर्वाण्यै ते नमो नमः ।।९।।
दुर्गायै दुर्ग–पारायै, सारायै सर्व–कारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै, धूम्रायै सततं नमः ।।१०।।
अति–सौम्याति–रौद्रायै, नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्–प्रतिष्ठायै, देव्यै कृत्यै नमो नमः ।।११।।
या देवी सर्व–भूतेषु, विष्णु–मायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१२।।
या देवी सर्व – भूतेषु, चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१३।।

या देवी सर्व – भूतेषु, बुद्धि–रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१४।।

या देवी सर्व – भूतेषु, निद्रा – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१५।।

या देवी सर्व – भूतेषु, क्षुधा – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१६।।

या देवी सर्व – भूतेषु, छाया – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१७।।

या देवी सर्व – भूतेषु, शक्ति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१८।।

या देवी सर्व – भूतेषु, तृष्णा – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।१९।।

या देवी सर्व – भूतेषु, क्षान्ति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२०।।

या देवी सर्व – भूतेषु, जाति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२१।।

या देवी सर्व – भूतेषु, लज्जा – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२२।।

या देवी सर्व – भूतेषु, शान्ति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२३।।

या देवी सर्व – भूतेषु, श्रद्धा – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२४।।

या देवी सर्व – भूतेषु, कान्ति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२५।।

या देवी सर्व – भूतेषु, लक्ष्मी – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२६।।
*या देवी सर्व – भूतेषु, धृति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२७।।*
या देवी सर्व – भूतेषु, वृत्ति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२८।।
या देवी सर्व – भूतेषु, स्मृति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।२९।।
या देवी सर्व – भूतेषु, दया – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३०।।
या देवी सर्व – भूतेषु, तुष्टि – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३१।।
*या देवी सर्व – भूतेषु, पुष्टि – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३२।।*
या देवी सर्व – भूतेषु, मातृ – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३३।।
या देवी सर्व – भूतेषु, भ्रान्ति – रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३४।।
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री, भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै, व्याप्ति–देव्यै नमो नमः ।।३५।।
चिति–रूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।३६।।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्ट-संश्रयात्, तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी, शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ।।३७।।
या साम्प्रतं चोद्धत-दैत्य-तापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत् क्षणमेव हन्ति नः, सर्वापदो भक्ति-विनम्र-मूर्तिभिः ।।३८।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

एवं स्तवादि-युक्तानां, देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्याययौ तोये, जाह्नव्या नृप-नन्दन! ।।३९।।
साऽब्रवीत् तान् सुरान्, सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ?
शरीर-कोशतश्चास्याः समुद्भूताऽब्रवीच्छिवा ।।४०।।

।। देव्युवाच ।।

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते, शुम्भ - दैत्य - निराकृतैः ।
देवैः समेतैः समरे, निशुम्भेन पराजितैः ।।४१।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

शरीर-कोशाद् यत्-तस्याः, पार्वत्याः निःसृताऽम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु, ततो लोकेषु गीयते ।।४२।।
तस्यां विनिर्गतायां तु, कृष्णाऽभूत्साऽपि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता, हिमाचल-कृताश्रया ।।४३।।
ततोऽम्बिका परं रूपं, विभ्राणां सु-मनोहरम् ।
ददर्शचण्डोमुण्डश्च, भृत्यांशुम्भ-निशुम्भयोः ।।४४।।

।। चण्ड-मुण्डौ उवाच ।।

ताभ्यांशुम्भाय चाख्याता, अतीव सु-मनोहरा ।
काऽप्यास्ते स्त्री महाराज, भासयन्ती हिमाचलम् ।।४५।।

नैव तादृक् क्वचिद् रूपं, दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काऽप्यसौ देवी, गृह्यतां चासुरेश्वर! ।।४६।।
स्त्री-रत्नमति-चार्वङ्गी, द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र ! तां भवान् द्रष्टुमर्हति ।।४७।।
यानि रत्नानि मणयो, गजाश्वादीनि वै प्रभो !
त्रैलोक्ये तु समस्तानि, साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ।।४८।।
ऐरावतं समानीतो, गज - रत्नं पुरन्दात् ।
पारिजात - तरुश्चायं, तथैवोच्चैःश्रवा हयः ।।४९।।
विमानं हंस - संयुक्तमेतत् तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्न - भूतमिहानीतं, यदासीद् वेधसोऽद्भुतम् ।।५०।।
निधिरेष महा - पद्मः, समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौचाब्धिर्मालामम्लान-पङ्कजाम् ।।५१।।
छत्रं ते वारुणं गेहे, काञ्चन - स्रावि तिष्ठति ।
तथाऽयंस्यदन्-वरो, यः पुराऽऽसीत्प्रजा-पतेः ।।५२।।
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम, शक्तिरीशः ! त्वया हृता ।
पाशः सलिल - राजस्य, भ्रातुस्तव परिग्रहे ।।५३।।
निशुम्भस्याब्धि-जाताश्च, समस्ता रत्न-जातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्नि - शौचे च वाससी ।।५४।।
एवं दैत्येन्द्र ! रत्नानि, समस्तान्याहतानि ते ।
स्त्री-रत्नमेषा कल्याणी, त्वया कस्मान्न गृह्यते? ।।५५।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

निशम्येति वचः शुम्भः, स तदा चण्ड-मुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं, दूतं देव्या महाऽसुरम् ।।५६।।

इति चेति च वक्तव्या, सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येऽति सम्प्रीत्या, तथा कार्यं त्वया लघु ।।५७।।
स तत्र गत्वा यत्रास्ते, शैलोद्देशेऽति – शोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह, श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।।५८।।

।। दूत उवाच ।।

देवि ! दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन, त्वत् – सकाशमिहागतः ।।५९।।
अव्याहताज्ञः सर्वासु, यः सदा देव – योनिषु ।
निर्जिताऽखिल–दैत्यारिः, सयदाह शृणुष्व तत् ।।६०।।
मम त्रैलोक्यमखिलं, मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञ – भागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ।।६१।।
त्रैलोक्ये वर– रत्नानि, मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गज – रत्नं च, हृत्वा देवेन्द्र–वाहनम् ।।६२।।
क्षीरोद – मथनोद्भूतमश्व – रत्नं ममामरैः ।
उच्चैः श्रवस–संज्ञं, तत् प्रणिपत्य समर्पितम् ।।६३।।
यानि चान्यानि देवेषु, गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्न – भूतानि भूतानि, तानि मय्येव शोभने ! ।।६४।।
स्त्री–रत्न–भूतां त्वां देवि !, लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ, यतो रत्न – भुजो वयम् ।।६५।।
मां वा ममानुजं वाऽपि, निशुम्भमुरु – विक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि!, रत्न–भूताऽसि वै यतः ।।६६।।
परमैश्वर्यमतुलं, प्राप्स्यसे मत् – परिग्रहात् ।
एतद्बुध्या समालोच्य, मत्–परिग्रहतां व्रज ।।६७।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

इत्युक्ता सा तदा देवी, गम्भीरान्तः – स्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा, ययेदं धार्यते जगत् ।।६८।।

।। देव्युवाच ।।

सत्यमुक्तं त्वया नात्र, मिथ्या किञ्चित् त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो, निशुम्भश्चापि तादृशः ।।६९।।
किं त्वत्र यत् – प्रतिज्ञातं, मिथ्या तत्–क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्प–बुद्धित्वात्, प्रतिज्ञा या कृता पुरा ।।७०।।
यो मां जयति संग्रामे, यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रति – बलो लोके, स मे भर्ता भविष्यति ।।७१।।
तदाऽऽगच्छतु शुम्भोऽत्र, निशुम्भो वा महाऽसुरः ।
मां जित्वा किं चिरेणाऽत्र, पाणिं गृह्णातु मे लघु ।।७२।।

।। दूत उवाच ।।

अवलिप्ताऽसि मैवं त्वं, देवि! ब्रूहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भ–निशुम्भयोः ? ।।७३।।
अन्येषामपि दैत्यानां, सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि !, किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ।।७४।।
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां, स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ।।७५।।
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता, पार्श्वं शुम्भ–निशुम्भयोः ।
केशाकर्षण–निर्धूत–गौरवा मा गमिष्यसि ।।७६।।

।। देव्युवाच ।।

एवमेतद् बली शुम्भो, निशुम्भश्चाति-वीर्य-वान् ।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे, यदनालोचिता पुरा ।।७७।।
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते, यदेतत् सर्वमादृतः ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय, स च युक्तं करोतु तत् क्लीं ॐ ।।७८।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सवार्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्या सन्तु। (यजमानस्य कामा) जगदम्बाऽर्पणमस्तु ।

।। षष्ठोऽध्यायः ।।

धूम्र-लोचन-वधः

।। ध्यान ।।

ॐ नागाधीश्वर-विष्टरांफणि-फणोत्तंसोरु-रत्नावली-
भास्वाद्-देह-लतां दिवाकर-निभां नेत्र-त्रयोद्भासिताम् ।
माला-कुम्भ-कपाल-नीरज-करां चन्द्रार्ध-चूडां परां,
सर्वज्ञेश्वर - भैरवाङ्क - निलयां पद्मावतीं चिन्तये ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः, स दूतोऽमर्ष - पूरितः ।
समाचष्ट समागम्य, दैत्य-राजाय विस्तरात् ।।१।।
तस्य दूतस्य तद्-वाक्यमाकर्ण्यासुर-राट् ततः ।
स-क्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्र-लोचनम् ।।२।।

।। शुम्भ उवाच ।।

हे धूम्र - लोचनाशु त्वं, स्व - सैन्य-परिवारितः ।
तामानय बलाद् दुष्टां, केशाकर्षण-विह्वलाम् ।।३।।
तत् - परित्राणादः कश्चिद्, यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि, यक्षो गन्धर्व एव वा ।।४।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं, स दैत्यो धूम्र - लोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्त्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ।।५।।
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं, तुहिनाचल-संस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति, मूलं शुम्भ-निशुम्भयोः ।।६।।

।। धूम्र-लोचन उवाच ।।

न चेत् प्रीत्याऽद्य भवती, मद्-भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष, केशाकर्षण-विह्वलाम् ।।७।।

।। देव्युवाच ।।

दैत्येश्वरेण प्रहितो, बलवान् बल - संवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं, ततः किं ते करोम्यहम् ।।८।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्र - लोचनः ।
हुङ्कारेणैव तं भस्म, सा चकाराम्बिका ततः ।।९।।
अथ क्रुद्धं महा - सैन्यमसुराणां तथाऽम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्ति-परश्वधैः ।।१०।।
ततो धुत-सटः कोपात्, कृत्वा नादं सु-भैरवम् ।
पपातासुर-सेनायां, सिंहो देव्या स्व-वाहनः ।।११।।
कांश्चित् कर-प्रहारेण, दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रान्त्या चाधरेणान्यान्, स जघान महाऽसुरान् ।।१२।।
केषाञ्चित् पाटयामास, नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तल-प्रहारेण, शिरांसि कृतवान् पृथक् ।।१३।।
विच्छिन्न - बाहु - शिरसः, कृतास्तेन तथाऽपरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुत - केसरः ।।१४।।
क्षणेन तद् - बलं सर्वं, क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या, वाहनेनाति - कोपिना ।।१५।।
श्रुत्वा तमसुरं देव्या, निहतं धूम्र - लोचनम् ।

बलं च क्षयितं कृत्स्नं, देवी-केसरिणा ततः ।।१६।।
चुकोप दैत्याधिपतिः, शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ, चण्ड-मुण्डौ महाऽसुरौ ।।१७।।

।। शुम्भ उवाच ।।

हे चण्ड! हे मुण्ड! बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च, सा समानीयतां लघु ।।१८।।
केशेष्वाकृष्य बद्धवा वा, यदि वः संशयो युधि ।
तदाऽशेषायुधैः सर्वैसुरैर्विनिहन्यताम् ।।१९।।
तस्यां हतायां दुष्टायां, सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्धवा, गृहित्वा तामथाम्बिकाम् ॐ ।।२०।।

ॐ जय जय श्रीमाकण्डेय-उत्तर पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्या सन्तु । (यजमानस्य कामा) जगदम्बाऽर्पणमस्तु ।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

चण्ड-मुण्ड-वधः

॥ ध्यानम् ॥

ॐ ध्यायेयं रत्न-पीठे शुक-कल-पठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गी,
न्यस्तैकांघ्रि-सरोजे शशि-शकल-धरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कह्लाराबद्ध-माला नियमित-विलसच्चोलिकां रक्त-वस्त्रां,
मातङ्गी शङ्ख-पात्रां मधुर-मधु-मदां चित्रकोद्भासि-भालाम् ॥

॥ ॐ मेधा ऋषिरुवाच ॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्ड - मुण्ड-पुरोगमाः ।
चतुरङ्ग - बलोपेता, ययुरभ्युद्धतायुधा ॥१॥
ददृश्यस्ते ततो देवीमिषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्र - शृङ्गे महति काञ्चने ॥२॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्ट-चापाऽसि-धरास्तथाऽन्ये तत्-समीपगाः ॥३॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं, मसी-वर्णमभूत् तदा ॥४॥
भृकुटी-कुटिलात् तस्या, ललाट-फलकाद्द्रुतम् ।
काली कराल-वदना, विनिष्क्रान्ताऽसि-पाशिनी ॥५॥
विचित्र-खट्वाङ्ग-धरा, नर-माला-विभूषणा ।
द्वीपि - चर्म - परीधाना, शुष्क - मांसाति - भैरवा ॥६॥
अति-विस्तार-वदना, जिह्वा-ललन-भीषणा ।
निमग्नाऽऽरक्त-नयना, नादाऽऽपूरित-दिङ्-मुखा ॥७॥

सा वेगेनाभि-पतिता, घातयन्ती महाऽसुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद् - बलम् ।।८।।
पार्ष्णि-ग्राहांकुश-ग्राहि-योध-घण्टा-समन्वितान् ।
समादायैक-हस्तेन, मुखे चिक्षेप वारणान् ।।९।।
तथैव योधं तुरगै, रथं सारथिना सह ।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यति-भैरवम् ।।१०।।
एकं जग्राह केशेषु, ग्रीवायामथ चापरम् ।
पादेनाक्रम्य चैवाऽन्यमुरसान्यमपोथयत् ।।११।
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि, महाऽस्त्राणि तथाऽसुरैः ।
मुखेन जग्राह रुषां, दशनैर्मथितान्यपि ।।१२।।
बलिनां तद्-बलं सर्वसुराणां दुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत् तथा ।।१३।।
असिना निहताः केचित्, केचित् खट्वाङ्ग-ताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरा, दन्ताग्राभि-हतास्तथा ।।१४।।
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वाचण्डोऽभिदुद्राव, तांकालीमति-भीषणाम् ।।१५।।
शर - वर्षैर्महा - भीमैर्भीमाक्षीं तां महाऽसुरः ।
छादयामास चक्रैश्च, मुण्डः क्षिप्तैः सहस्त्रशः ।।१६।।
तानि चक्राण्यनेकानि, विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथाऽर्क-बिम्बानि, सु-बहूनि घनोदरम् ।।१७।।
ततो जहासाति-रुषा, भीमं भैरव-नादिनी ।
काली कराल-वक्त्रान्तर्दुर्दर्श-दशनोज्ज्वला ।।१८।।
उत्थाय च महा - सिंहं, देवी चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्य केशेषु, शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ।।१९।।

अथ मुण्डोऽभ्यधावत् तां, दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद् भूमौ, सा खड्गाभि-हतं रुषा ।।२०।।
*छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रश्चक्रे नादं सु-भैरवम् ।
तेन नादेन महता, भासितं भुवन-त्रयम् ।।२१।।*
हत-शेषं ततः सैन्यं, दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
मुण्डं च सु-महा-वीर्यं, दिशो भेजे भयातुरम् ।।२२।।
शिरश्चण्डस्य काली च, गृहीत्वा मुण्डमेव च ।
प्राह प्रचण्डाट्टहास-मिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ।।२३।।

।। देव्युवाच ।।

मया तवात्रोपहृतौ, चण्ड-मुण्डौ महा-पशू ।
युद्ध-यज्ञे स्वयं शुम्भं, निशुम्भं च हनिष्यसि ।।२४।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा, चण्ड-मुण्ौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी, ललितं चण्डिका वचः ।।२५।।

।। चण्डिका उवाच ।।

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च, गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके, ख्याता देवि! भविष्यसि ॐ ।।२६।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-माहात्म्ये सत्या सन्तु । (यसमानस्य कामा) जगदम्बार्पणमस्तु ।

।। अष्टमोऽध्यायः ।।

रक्त-बीज-वधः

।। ध्यान ।।

ॐ अरुणां करुणा-तरङ्गिताक्षीं, धृत-पाशांकुश-वाण-चाप-हस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

चण्डे च निहते दैत्ये, मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु, क्षयितेष्वसुरेश्वरः ।।१।।
ततः कोप-पराधीन-चेताः शुम्भः प्रताप-वान् ।
उद्योगं सर्व - सैन्यानां, दैत्यानामादिदेश ह ।।२।।

।। शुम्भ उवाच ।।

अद्य सर्व - बलैर्दैत्याः, षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्व - बलैर्वृताः ।।३।।
कोटि - वीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां, निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ।।४।।
कालका दौर्हृदा मौर्याः, कालकेयास्तथाऽसुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु, आज्ञया त्वरिता मम ।।५।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

इत्याज्ञाप्यासुर - पतिः, शुम्भो भैरव - शासनः ।
निर्जगाम महा - सैन्य - सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ।।६।।
आयान्तं चण्डिकांदृष्ट्वा, तत्-सैन्यमति-भीषणम् ।
ज्या-स्वनैः पूरयामास, धरणी-गगनान्तरम् ।।७।।

ततः सिंहो महा – नादमतीव कृत – वान् नृप ! ।
घण्टा–स्वनेन तन्नादमम्बिका चोप–बृंहयत् ।।८।।
धनुर्ज्या–सिंह–घण्टानां, नादापूरित–दिङ्–मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली, जिग्ये विस्तारिताननाा ।।९।।
तं निनादमुप – श्रुत्य, दैत्य – सैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली, स–रोषैः परिवारिताः ।।१०।।
एतस्मिन्नन्तरे भूप ! विनाशाय सुर – द्विषाम् ।
भवायामर – सिंहानामति–वीर्य–बलान्विताः ।।११।।
ब्रह्मेश – गुह – विष्णूनां, तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य, तद्–रूपैश्चण्डिकां ययुः ।।१२।।
यस्य देवस्य यद्–रूपं, यथा भूषण–वाहनम् ।
तद्–वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ।।१३।।
हंस–युक्त–विमानाग्रे, साक्ष–सूत्र–कमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साऽभिधीयते ।।१४।।
माहेश्वरी वृषारूढा, त्रिशूल – वर – धारिणी ।
महाऽहि–वलया प्राप्ता, चन्द्र–रेखा–विभूषणा ।।१५।।
कौमारी शक्ति–हस्ता च, मयूर–वर–वाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुह–रूपिणी ।।१६।।
तथैव वैष्णवी – शक्तिर्गरुडोपरि – संस्थिता ।
शङ्ख–चक्र–गदा–शार्ङ्ग–खड्ग–हस्ताभ्युपाययौ ।।१७।।
यज्ञ – वाराहमतुलं, रूपं या बिभ्रती हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र, वाराहीं बिभ्रती तनुम् ।।१८।।
नारसिंही नृसिंहस्य, बिभ्रती सदृशं वपुः ।

प्राप्ता तत्र सटाक्षेप – क्षिप्त – नक्षत्र–संहतिः ।।१९।।
वज्र–हस्ता तथैवेन्द्री, गज–राजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्र – नयना, यथा शक्रस्तथैव सा ।।२०।।
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देव–शक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं, ममप्रीत्या ऽऽह चण्डिकाम् ।।२१।।
ततो देवी–शरीरात् तु, विनिष्क्रान्ताऽति–भीषणा ।
चण्डिका–शक्तिरत्युग्रा, शिवा–शत–निनादिनी ।।२२।।

।। देव्युवाच ।।

सा चाह धूम्र – जटिलमीशानमपराजिता ।
दूत ! त्वं गच्छ भगवन् ! पार्श्वंशुम्भ–निशुम्भयोः ।।२३।।
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च, दानवावति – गर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र, युद्धाय समुपस्थिताः ।।२४।।
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां, देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं, यदि जीवितुमिच्छथ ।।२५।।
बलावलेपादथ चेद्, भवन्तो युद्ध–कांक्षिणः ।
तदाऽऽगच्छत तृप्यन्तु, मच्छिवाः पिशितेन वः ।।२६।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

यतो नियुक्तो दौत्येन, तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिव–दूतीति लोकेऽस्मिन्, ततः सा ख्यातिमागता ।।२७।।
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः, शर्वाख्यातं महाऽसुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र, कात्यायनी स्थिता ।।२८।।
ततः प्रथममेवाग्रे, शर–शक्त्यृष्टि – वृष्टिभिः ।

ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ।।२९।।

सा च तान् प्रहितान् वाणांञ्छूल-शक्ति-परश्वधान् ।

चिच्छेद लीलयाऽऽध्मात-धनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ।।३०।।

तस्याग्रतस्थता काली, शूल-पात-विदारितान् ।

(खट्वाङ्ग-पोथितांश्चारीन्, कुर्वती व्यचरत् तदा।)

कमण्डलु-जलाक्षेप-हत-वीर्यान् हतौजसः ।।३१।।

ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्, येन येन स्म धावति ।

माहेश्वरी-त्रिशूलेन, तथा चक्रेण वैष्णवी ।।३२।।

दैत्याञ्जघान कौमारी, तथा शक्त्याति-कोपना ।

ऐन्द्री कुलिश-पातेन, शतशो दैत्य - दानवाः ।।३३।।

पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां, रुधिरौघ - प्रवर्षिणः ।

तुण्ड-प्रहार-विध्वस्ता, दंष्टाग्रं-क्षत-वक्षसः ।।३४।।

वाराह - मूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ।

नखैर्विदारितांश्चान्यान्, भक्षयन्ति महाऽसुरान् ।।३५।।

नारसिंही चचाराजौ, नादापूर्ण - दिगम्बरा ।

चण्डाट्ट-हासैरसुराः, शिव-दूत्यभि-दूषिताः ।।३६।।

पेतुः पृथिव्यां पतितान्, तांश्च खादथ सा तदा ।

इति मातृ - गणं क्रुद्धं, मर्दयन्तं महाऽसुरान् ।।३७।।

दृष्ट्वाऽभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारि - सैनिकाः ।

पलायन-परान् दृष्टवा, दैत्यान् मातृ-गणार्दितान् ।।३८।।

योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो, रक्त-बीजो महाऽसुरः ।

रक्त - बिन्दुर्यदा भूमौ, पतत्यस्य शरीरतः ।।३९।।

समुत्पतति मेदिन्यां, तत्-प्रमाणस्तदाऽसुरः ।

युयुधे स गदा-पाणिरिन्द्र-शक्त्या महाऽसुरः ।।४०।।
ततश्चैन्द्री स्व-वज्रेण, रक्त - बीजमताडयत् ।
कुलिशेनाहतस्याशु, बहु सुस्राव शोणितम् ।।४१।।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्-रूपास्तत्-पराक्रमाः ।
यावन्तः पतितास्तस्य, शरीराद् रक्त-विन्दवः ।।४२।।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्-वीर्य-बल-विक्रमाः ।
ते चापि युयुधुस्तत्र, पुरुषा रक्त-सम्भवाः ।।४३।।
समं मातृभिरत्युग्र-शस्त्र - पाताति - भीषणम् ।
पुनश्च वज्र - पातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।।४४।।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ।
वैष्णवी समरे चैनं, चक्रेणाभि-जघान ह ।।४५।।
गदया ताडयामास, ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ।
वैष्णवी चक्र-भिन्नस्य, रुधिर-स्राव-सम्भवैः ।।४६।।
सहस्रशो जगद्-व्याप्तं, तत्-प्रमाणैर्महाऽसुरैः ।
शक्त्याः जघान कौमारी, वाराही च तथाऽस्मिना ।।४७।।
माहेश्वरी त्रिशूलेन, रक्त - बीजं महाऽसुरम् ।
स चापि गदया दैत्यः, सर्वा एवाहनत् पृथक् ।।४८।।
मातृः कोप-समाविष्टो, रक्त - बीजो महाऽसुरः ।
तस्याहतस्य बहुधा, शक्ति-शूलादिभिर्भुवि ।।४९।।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ।
तैश्चासुरासृक् - सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।।५०।।
व्याप्तमासीत् ततो देवा, भयमाजग्मुत्तरुमम् ।
तान्विषण्णान्सुरान्दृष्ट्वा, चण्डिका प्राह सत्वरा ।।५१।।

।। देव्युवाच ।।

उवाच कालीं चामुण्डे ! विस्तीर्णं वदनं कुरु ।
मच्छस्त्रपात-सम्भूतान्, रक्त-विन्दून् महाऽसुरान् ।।५२।।
रक्त-बिन्दोः प्रीतच्छ त्वं, वक्त्रेणानेन वेगिना ।
भक्षयन्ती चर रणे, तदुत्पन्नान् महाऽसुरान् ।।५३।।
एवमेष क्षयं दैत्यः, क्षीण - रक्तो गमिष्यति ।
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा, न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।।५४।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

इत्युक्त्वा तां ततो देवी, शूलेनाभि-जघान तम् ।
मुखेन काली जगृहे, रक्त-बीजस्य शोणितम् ।।५५।।
ततोऽसावाजघानाथ, गदया तत्र चण्डिकाम् ।
न चास्या वेदनां चक्रे, गदा-पातोऽल्पिकामपि ।।५६।।
तस्याहतस्य देहात् तु, बहु सुस्राव शोणितम् ।
यतस्ततस्तद्-वक्त्रेण, चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।।५७।।
मुखे समुद्गता येऽस्या, रक्तं-पातान् महाऽसुराः ।
तांश्चखादाथ चामुण्डा, पपौ तस्य च शोणितम् ।।५८।।
देवी शूलेन वज्रेण, बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ।
जघान रक्त-बीजं तं, चामुण्डा-पीत-शोणितम् ।।५९।।
स पपात मही - पृष्ठे, शस्त्र - सङ्घ - समाहतः ।
नीरक्तश्च महीपाल!, रक्त-बीजो महाऽसुरः ।।६०।।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप !
तेषां मातृ-गणो जातो, ननर्तासृङ्-मदोद्धतः ॐ ।।६१।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्याः सन्तु । (यजमानस्य कामाः) जगदम्बार्पणमस्तु ।

।। नवमोऽध्यायः ।।

निशुम्भ-वधः

।। ध्यानम् ।।

ॐ बन्धूक-काञ्चन-निभं रुचिराक्ष-मालां, पाशांकुशौ च वरदां निज-बाहु-दण्डैः । विभ्राणमिन्दु-शकलाभरणं त्रिनेत्रमर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ।।

।। ॐ राजोवाच ।।

विचित्रमिदमाख्यातं, भगवन्! भवता मम ।
देव्याश्चरित-महात्म्यं, रक्त-बीज-वधाश्रितम् ।।१।।
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं, रक्त - बीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्-कर्म, निशुम्भश्चाति-कोपनः ।।२।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

चकार कोपमतुलं, रक्त - बीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च, हतेष्वन्येषु चाहवे ।।३।।
हन्यमानं महा-सैन्यं, विलोक्यामर्षमुद्-वहन् ।
अभ्यधावन् निशुम्भोऽथ, मुख्ययाऽसुर-सेनया ।।४।।
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे, पार्श्वयोश्च महासुराः ।
सन्दष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा, हन्तुं देवीमुपाययुः ।।५।।
आजगाम महा-वीर्यः, शुम्भोऽपि स्व-बलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्, कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ।।६।।
ततो युद्धमतीवासीद्, देव्या शुम्भ-निशुम्भयोः ।
शर - वर्षमतीवोग्रं, मेघयोरिव वर्षतोः ।।७।।

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां, चण्डिका स्व-शरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु, शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ।।८।।
निशुम्भो निशितं खड्गं, चर्म चादाय स-प्रभम् ।
अताडयन् मूर्ध्नि सिंहं, देव्या वाहनमुत्तमम् ।।९।।
ताडिते वाहने देवी, क्षुर - प्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद, चर्म चाप्यष्ट-चन्द्रकम् ।।१०।।
छिन्ने चर्मणि खड्गे च, शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे, चक्रेणाभि-मुखागताम् ।।११।।
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ, शूलं जग्राह दानवः ।
आयान्तं मुष्टि - पातेन, देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ।।१२।।
आविध्याथ गदां सोऽपि, चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
साऽपि देव्या त्रिशूलेन, भिन्ना भस्मत्वमागता ।।१३।।
ततः परशु - हस्तं तमायान्तं दैत्य - पुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भू -तले ।।१४।।
तस्मिन्निपतिते भूमौ, निशुम्भे भीम - विक्रमे ।
भ्रातर्यतीव - संक्रुद्धः, प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ।।१५।।
तमायान्तं समालोक्य, देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्या-शब्दं चापि धनुषश्चकारातीव - दुःसहम् ।।१६।।
पूरयामास ककुभो, निज-घण्टा-स्वनेन च ।
समस्त-दैत्य-सैन्यानां, तेजो-वध-विधायिना ।।१७।।
ततः सिंहो महा-नादैस्त्याजितेभ - महा-मदैः ।
पूरयामास गगनं, गां तथैव दिशो दश ।।१८।।
ततः काली समुत्पत्य, गगनं क्ष्मामताडयत् ।

कराभ्यांतन्–निनादेन, प्राक्–स्वनास्तेतिरोहिताः ।।१९।।
अट्टाट्ट – हासमशिवं, शिव – दूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः, शुम्भः कोपं परं ययौ ।।२०।।
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति, व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं, देवैराकाश – संस्थितैः ।।२१।।
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालाऽति–भीषणा ।
आयान्ती वह्नि–कूटाभा, सा निरस्ता महोल्कया ।।२२।।
सिंह–नादेन शुम्भस्य, व्याप्तं लोक–त्रयान्तरम् ।
निर्घात – निःस्वनो घोरो, जितवानवनी–पते! ।।२३।।
शुम्भ–मुक्ताञ्छरान् देवी, शुम्भस्तत् प्रहितांञ्छरान् ।
चिच्छेद स्व–शरैरुग्रैः, शतशोऽथ सहस्त्रशः ।।२४।।
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा, शूलेनाभि–जघान तम् ।
स तदाऽभिहतो भूमौ, मूर्च्छितो निपपात ह ।।२५।।
ततो निशुम्भः सम्प्राप्य, चेतनामात्त – कार्मुकः ।
आजघन शरैर्देवीं, कालीं केसरिणं तथा ।।२६।।
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ।।२७।।
ततो भगवती क्रुद्धा, दुर्गा दुर्गार्ति–नाशिनी ।
चिच्छेदं तानि चक्राणि, स्व–शरैः सायकांश्च तान् ।।२८।।
ततो निशुम्भो वेगेन, गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं, दैत्य–सेना–समावृतः ।।२९।।
तस्यापतत एवाशु, गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शित – धारेण, स च शूलं समाददे ।।३०।।
शूल– हस्तं समायान्तं, निशुम्भममरार्दनम् ।

हृदि विव्याध शूलेन, वेगाविद्धेन चण्डिका ।।३१।।
भिन्नस्य तस्य शूलेन, हृदयान्निः सृतोऽपरः ।
महा-बलो महा - वीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ।।३२।।
तस्य निष्क्रामतो देवी, प्रहस्य स्वनवत् ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन, ततोऽसावपतद् भुवि ।।३३।।
ततः सिंहश्चखादोग्रं, दंष्ट्रा क्षुण्ण - शिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली, शिव-दूती तथाऽपरान् ।।३४।।
कौमारी-शक्ति-निर्भिनाः, केचिन्नेशुर्महाऽसुराः ।
ब्रह्माणी-मन्त्र-पूतेन, तोयेनान्ये निराकृताः ।।३५।।
माहेश्वरी - त्रिशूलेन, भिन्ना पेतुस्तथाऽपरे ।
वाराही-तुण्ड-घातेन, केचिच्चूर्णी-कृता भुवि ।।३६।।
खण्डं खण्डं च चक्रेण, वैष्णव्या दानवाः कृताः ।
वज्रेण चैन्द्री-हस्ताग्र-विमुक्तेन तथाऽपरे ।।३७।।
केचिद् दिनेशुरसुराः, केचिन् नष्टा महाऽऽहवात् ।
भक्षिताश्चापरे काली-शिव-दूती-मृगाधिपैः ॐ ।।३८।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्याः सन्तु । (यजमानस्य कामाः) जगदम्बार्पणमस्तु ।

।। दशमोऽध्यायः ।।

शुम्भ-वधः

।। ध्यानम् ।।

ॐ उत्तप्त-हेम-रुचिरां रवि-चन्द्र-वह्नि-नेत्रां धनुश्शर-युतांकुश-पाश-शूलम् । रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिव-शक्ति-रूपां, कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दु-लेखाम् ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा, भ्रातरं प्राण-सम्मितम् ।
हन्य-मानं बलं चैव, शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद् वचः ।।१ ।।

।। शुम्भ उवाच ।।

बलावलेपाद् दुष्टे ! त्वं, मा दुर्गे ! गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य, युद्ध्यसे याति-मानिनी ।।२ ।।

।। देव्युवाच ।।

एकैवाऽहं जगत्यत्र, द्वितीया का ममापरा ?
पश्यैता दुष्ट ! मय्येव, विशन्त्यो मद्-विभूतयः ।।३ ।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

ततः समस्तास्ता देव्यो, ब्रह्माणि-प्रमुखा लयम् ।
तस्या देवास्तनौ जग्मुरेकैवासीत् तदाऽम्बिका ।।४।।

।। देव्युवाच ।।

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्-संहृतं मयैकैव, तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।।५ ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्व - देवानामसुराणां च दारुणम् ।।६ ।।

शर – वर्षै शितैः शस्त्रैस्थतास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद् भूयः, सर्व–लोक–भयङ्करम् ।।७।।

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो, मुमुचे यान्यथाऽम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्–प्रतीघात–कर्तृभिः ।।८।।

मुक्तानि तेन चास्त्राणि, दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्र–हुङ्कारोच्चारणादिभिः ।।९।।

ततः शर – शतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
साऽपि तत्–कुपिता देवी, धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ।।१०।।

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण, तामप्यस्य करे स्थिताम् ।।११।।

ततः खड्गमुपादाय, शत–चन्द्रं च भानु–मत् ।
अभ्यधावत् तदा देवीं, दैत्यानामधिपेश्वरः ।।१२।।

तस्यापतत एवाशु, खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्वाणैश्चर्म चार्क – करामलम् ।।१३।।
(अश्वांश्च पातयामास, रथं सारथिना सह ।)

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्न–धन्वा वि–सारथिः ।
जग्रहा मुद्गरं घोरमम्बिका – निधनोद्यतः ।।१४।।

चिच्छेदापततस्तस्य, मुद्गरं निशितैः शरैः ।
तथापि सोऽभ्यधावत् तां, मुष्टिमुद्यम्य वेग–वान् ।।१५।।

स मुष्टिं पातयामास, हृदये दैत्य – पुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी, तलेनोरस्यताडयत् ।।१६।।

तल – प्रहाराभिहतो, निपपात मही – तले ।
स दैत्य – राजः सहसा, पुनरेव तथोत्थितः ।।१७।।

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा, युयुधे तेन चण्डिका ।।१८।।
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्ध-मुनि-विस्मय-कारकम् ।।१९।।
ततो नियुद्धं सु-चिरं, कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास, चिक्षेप धरणी - तले ।।२०।।
(स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य, मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।)
अभ्यधावत दुष्टात्मा, चण्डिका-निधनेच्छया ।
तमायान्तं ततो देवी, सर्व - दैत्य - जनेश्वरम् ।।२१।।
जगत्यां पातयामास, भित्त्वा शूलेन वक्षसि ।
स गतासुः पपातोर्व्यां, देवी-शूलाग्र-विक्षतः ।।२२।।
चालयन् सकलां पृथ्वीं, साब्धि-द्वीपां स-पर्वताम् ।
ततः प्रसन्नमखिलं, हते तस्मिन् दुरात्मनि ।।२३।।
जगत् स्वास्थ्यमतीवाप, निर्मलं चाभवन्नभः ।
उत्पात-मेघाः सोल्का ये, प्रागासंस्ते शमंययुः ।।२४।।
सरितो मार्ग-वाहिन्यस्तथाऽऽसंस्तत्र पातिते ।
ततो देव-गणाः सर्वे, हर्ष-निर्भर-मानसाः ।।२५।।
बभूवुर्निहते तस्मिन्, गन्धर्वा ललितं जगुः ।
अवादयंस्तथैवान्ये, ननृतुश्चाप्सरो - गणाः ।।२६।।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः, सुप्रभोऽभूद् दिवाकरः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः, शान्ता दिग्जनित-स्वनाः ॐ ।।२७।।
ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्याः सन्तु । (यजमानस्य कामाः) जगदम्बार्पणमस्तु ।

।। एकादशः अध्यायः ।।

देव्या स्तुतिः

।। ध्यानम् ।।

ॐ बाल-रवि-द्युतिमिन्दु-किरीटां, तुङ्ग-कुचां नयन-त्रय-युक्ताम् ।
स्मेर-मुखीं वरदांकुश - पाशाभीति - करां प्रभजे भुवनेशीम् ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

देव्या हते तत्र महाऽसुरेन्द्रे, सेन्द्राः सुरा वह्नि - पुरो - गमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट-लाभाद्, विकाशि-वक्त्राब्ज-विकाशिताशाः ।।१।।

।। देवा ऊचुः ।।

देवि! प्रपन्नार्ति - हरे! प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरी! पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य ।।२।।
आधार - भूता जगतस्त्वमेका, मही - स्वरूपेण यतः स्थिताऽसि ।
अपां स्वरूप - स्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलंघ्य - वीर्ये ! ।।३।।
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त - वीर्या, विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया ।
सम्मोहितं देवि! समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति-हेतुः ।।४।।
विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्य-परा परोक्तिः ।।५।।
सर्व-भूता यदा देवी, स्वर्ग-मुक्ति-प्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा, भवन्तु परमोक्तयः ।।६।।
सर्वस्य बुद्धि - रूपेण, जनस्य हृदि संस्थिते !
स्वर्गापवर्गदे देवि !, नारायणि ! नमस्तु ते ।।७।।
कला-काष्ठादि - रूपेण, परिणाम - प्रदायिनि !
विश्वस्योपरतौ शक्ते !, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।८।।

सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये !, शिवे ! सर्वार्थ-साधिके !
शरण्ये ! त्र्यम्बके ! गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।९।।
सृष्टि-स्थिति-विनाशानां, शक्ति-भूते ! सनातनि !
गुणाश्रये ! गुण-मये!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१०।।
शरणागत - दीनार्त - परित्राण - परायणे !
सर्वस्यार्ति-हरे देवि!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।११।।
हंस-युक्त-विमानस्थे!, ब्रह्माणी-रूप-धारिणि !
कौशाम्भः-क्षरिके! देवि !, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१२।।
त्रिशूल-चन्द्राहि-धरे!, महा-वृषभ-वाहिनि !
माहेश्वरी-स्वरूपेण, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१३।।
मयूर-कुक्कुट-वृते !, महा-शक्ति-धरेनघे !
कौमारी-रूप-संस्थाने!, नारायणणि ! नमोऽस्तु ते ।।१४।।
शङ्ख-चक्र-गदा - शार्ङ्ग - गृहीत - परमायुधे !
प्रसीद वैष्णवी-रूपे!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१५।।
गृहीतोग्र - महा - चक्रे !, दंष्ट्रोद्धृत-वसुन्धरे !
वराह-रूपिणि ! शिवे !, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१६।।
नृसिंह-रूपेणोग्रेण, हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे !
त्रैलोक्य-त्राण-सहिते !, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१७।।
किरीटिनि! महा-वज्रे!, सहस्र-नयनोज्ज्वले !
वृत्र-प्राण-हरे! चैन्द्रि!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१८।।
शिव-दूती-स्वरूपेण, हत-दैत्य-महा-बले !
घोर-रूपे ! महा-रावे!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।१९।।
दंष्ट्रा-कराल-वदले!, शिरो-माला-विभूषणे !

चामुण्डे! मुण्ड-मथने!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।२०।।
लक्ष्मि! लज्जे! महा-विद्ये!, श्रद्धे! पुष्टि-स्वधे! ध्रुवे !
महा-रात्रि! महा-माये!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।२१।।
मेधे! सरस्वति! वरे!, भूति! बाभ्रवि! तामसि !
नियते त्वं प्रसीदेशे!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।२२।।
*सर्वत: पाणि-पादान्ते, सर्वतोक्षि-शिरो-मुखे !
सर्वत: श्रवण-घ्राणे!, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।२३।।*
सर्व-स्वरूपे! सर्वेशे, सर्व-शक्ति-समन्विते !
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि!, दुर्गे देवि! नमोऽस्तु ते ।।२४।।
एतत् ते वदनं सौम्यं, लोचन - त्रय - भूषितम् ।
पातु न: सर्व-भुतिभ्य:, कात्यायनि! नमोऽस्तु ते ।।२५।।
ज्वाला - करालमत्युग्रमशेषासुर - सूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्र-कालि ! नमोऽस्तु ते ।।२६।।
हिनस्ति दैत्य - तेजांसि, स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि !, पापेभ्योऽन: सुतानिव ।।२७।।
असुरासृग्-वसा-पङ्क-चर्चितस्ते करोज्ज्वल: ।
शुभाय खड्गो भवतु, चण्डिके! त्वां नता वयम् ।।२८।।
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा, रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां, त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ।।२९।।
एतत् कृतं यत् कदनं त्वयाऽद्य, धर्म-द्विषां देवि! महाऽसुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्म-मूर्तिं, कृत्वाऽम्बिके ! तत् प्रकरोति काऽन्या? ।।३०।।
विद्यासु शास्त्रेषु विवेक - दीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या? ।
ममत्व - गर्तेऽति - महाऽन्धकारे, विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ।।३१।।

रक्षांसि यत्रोग्र-विषाश्च नागा, यत्रारयो दस्यु-बलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाऽब्धि-मध्ये, तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ।।३२।।
विश्वेश्वरि! त्वं परिपासि विश्वं, विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेश - वन्द्या भवती भवन्ति, विश्वाश्रया ये त्वयि भक्ति-नम्राः ।।३३।।
देवि! प्रसीद परिपालय नोऽरि-भीतेर्नित्यं यथाऽसुर-वधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्व-जगतां प्रशमं नयाशु, उत्पात-पाक-जनितांश्च महोप-सर्गान्।।३४।।
प्रणतानां प्रसीद त्वं, देवि! विश्वार्ति-हारिणि !
त्रैलोक्य-वासिनामीड्ये, लोकानां वरदा भव ।।३५।।

।। देव्युवाच ।।

वरदाऽहं सुर - गणा!, वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि, जगतामुप-कारकम् ।।३६।।

।। देवा ऊचुः ।।

सर्वा-बाधा-प्रशमनं, त्रैलोक्यस्याऽखिलेश्वरि !
एतन्मेव त्वया कार्यमस्माकं वैरि - नाशनम् ।।३७।।

।। देव्युवाच ।।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते, अष्टा-विंशतिमे युगे ।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महाऽसुरौ ।।३८।।
नन्द-गोप-गृहे जाता, यशोदा-गर्भ-सम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि, विन्ध्याचल-निवासिनी ।।३९।।
पुनरप्यति - रौद्रेण, रूपेण पृथिवी - तले ।
अवतीर्य हनिष्यामि, वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ।।४०।।
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्, वैप्रचित्तान् महाऽसुरान् ।
रक्तादन्ता भविष्यन्ति, दाडिमी-कुसुमोपमाः ।।४१।।

ततो मां देवताः स्वर्गे, मर्त्य-लोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति, सततं रक्त - दन्तिकाम् ।।४२।।
भूयश्च शत - वार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ, सम्भविष्याम्ययोनिजा ।।४३।।
ततः शतेन नेत्राणां, निरीक्षिष्यामि यन्-मुनीम् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः, शताक्षीमिति मां ततः ।।४४।।
ततोऽहमखिलं लोकमात्म - देह - समुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः, शाकैरावृष्टेः प्राण-धारकैः ।।४५।।
शाकम्भरीति विख्यातिं, तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि, दुर्गमाख्यं महाऽसुरम् ।।४६।।
दुर्गा-देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं, रूपं कृत्वा हिमाचले ।।४७।।
रक्षांसि भक्षयिष्यामि, मुनीनां त्राण-कारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे, स्तोष्यन्त्यानम्र-मूर्तयः ।।४८।।
भीमा - देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति ।
यदाऽरुणाख्यस्त्रैलोक्ये, महा-बाधां करिष्यति ।।४९।।
तदाऽहं भ्रामरं रूपं, कृत्वाऽसंख्येय-षट्-पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय, वधिष्यामि महाऽसुरम् ।।५०।।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा, दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदाऽवतीर्याऽहं, करिष्याम्यरि-संक्षयम् ॐ ।।५१।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्याः सन्तु । (यजमानस्य कामाः) जगदम्बार्पणमस्तु ।

।। द्वादशोऽध्यायः ।।

फल-स्तुतिः

।। ध्यानम् ।।

ॐ विद्युद्-दाम-सम-प्रभां मृग-पति-स्कन्ध-स्थितां भीषणाम् ।
कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्-हस्ताभिरासेवितास् ।
हस्तैश्चक्र-गदाऽसि -खेट - विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम् ।
विभ्राणामनलात्मिकां शशि-धरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

।। ॐ देव्युवाच ।।

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं, स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याऽहं सकलां बाधां, नाशयिष्याम्यसंशयम् ।।१।।
मधु-कैटभ-नाशं च, महिषासुर - घातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्-वद्, वधं शुम्भ-निशुम्भयोः ।।२।।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, नवम्यां चैक - चेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या, मम महात्म्यमुत्तमम् ।।३।।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्, दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं, न चैवेष्ट - वियोजनम् ।।४।।
शत्रुतो न भयं तस्य, दस्युतो वा न राजतः ।
नशस्त्रानल-तोयौघात्, कदाचित् सम्भविष्यति ।।५।।
तस्मान्-ममैतन्-माहात्म्यं, पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या, परं स्वस्त्ययनं हि तत् ।।६।।
उपसर्गानशेषांस्तु, महा-मारी-समुद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पातं, माहात्म्यं शमयेन् मम ।।७।।

यत्रैतत् पठ्यते सम्यङ्, नित्यमायतने मम ।
सदा न तद् विमोक्ष्यामि, सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ।।८।।
बलि – प्रदाने पूजायामग्नि – कार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ।।९।।
जानताऽजानता वाऽपि, बलि–पूजां तथा कृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या, वह्नि – होमं तथा कृतम् ।।१०।।
शरत्–काले महा–पूजा, क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं, श्रुत्वा भक्ति – समन्वितः ।।११।।
सर्वा–बाधा–विनिर्मुक्तो, धन–धान्य–सुतान्वितः ।
मनुष्यो मत् – प्रसादेन, भविष्यति न संशयः ।।१२।।
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं, तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु, जायते निर्भयः पुमान् ।।१३।।
रिपवः संक्षयं यान्ति, कल्याणं चोप–पद्यते ।
नन्दते च कुलं पुंसां, माहात्म्यं मम शृण्वताम् ।।१४।।
शान्ति – कर्मणि सर्वत्र, तथा दुःस्वप्न – दर्शने ।
ग्रह–पीडासु चोग्रासु, माहात्म्यं शृणुयान्मम ।।१५।।
उप–सर्गाः शमं यान्ति, ग्रह – पीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं, सु–स्वप्नमुप –जायते ।।१६।।
बाल–ग्रहाभि–भूतानां, बालानां शान्ति–कारकम् ।
सङ्घात – भेदे च नृणां, मैत्री – करणमुत्तमम् ।।१७।।
दुर्वृत्तानामशेषाणां, बल – हानि – करं परम् ।
रक्षो – भूत – पिशाचानां, पठनादेव नाशनम् ।।१८।।
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं, मम सन्निधि – कारकम् ।
पशु–पुष्पार्घ्य–धूपैश्च, गन्ध–दीपैस्तथोत्तमैः ।।१९।।

विप्राणां भोजनैर्होमैः, प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः, प्रदानैर्वत्सरेण या ।।२०।।
प्रीतिर्मे क्रियते साऽस्मिन्, सुकृत् सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि, तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ।।२१।।
रक्षां करोति भूतेभ्यो, जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे, दुष्ट – दैत्य – निबर्हणम् ।।२२।।
तस्मिञ्छ्रुते वैरि – कृतं, भयं पुंसां न जायते ।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च, याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ।।२३।।
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु, प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।
अरण्ये प्रान्तरे वाऽपि, दावाग्नि–परि–वारितः ।।२४।।
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये, गृहीतो वाऽपि शत्रुभिः ।
सिंह–व्याघ्रानु–यातो वा, वने वा वन–हस्तिभिः ।।२५।।
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो, वध्यो बन्ध–गतोऽपि वा ।
आघूर्णितो वा वातेन, स्थितः पोते महार्णवे ।।२६।।
पतत्सु चापि शस्त्रेषु, संग्रामे भृश – दारुणे ।
सर्वा –बाधासु घोरासु, वेदनाऽभ्यर्दितोऽपि वा ।।२७।।
स्मरन् ममैतच्चरितं, नरो मुच्येत सङ्कटात् ।
मम प्रभावात् सिंहाद्या, दस्यवो वैरिणस्तथा ।।२८।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

दूरादेव पलायन्ते, स्मरतश्चरितं मम ।
इत्युक्त्वा सा भगवती, चण्डिकाचण्ड–विक्रमा ।।२९।।
पश्यतामेव देवानां, तत्रैवान्तरधीयत ।
तेऽपि देवा निरातङ्काः, स्वाधिकारान् यथा पुरा ।।३०।।

यज्ञ – भाग – भुजः सर्वे, चक्रुर्विनिहताऽरयः ।
दैत्याश्च देव्या निहते, शुम्भे देव – रिपौ युधि ।।३१।।
जगद्–विध्वंसिनि तस्मिन्, महोग्रेऽतुल–विक्रमे ।
निशुम्भे च महा–वीर्ये, शेषाः पातालमाययुः ।।३२।।
एवं भगवती देवी, सा नित्याऽपि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप !, जगतः परि – पालनम् ।।३३।।
तयैतन् मोह्यते विश्वं, सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं, तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ।।३४।।
व्याप्तं तयैतत् सकलं, ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर !
महा–काल्या महा–काले, महा–मारी–स्वरूपया ।।३५।।
सैव काले महा–मारी, सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां, सैव काले सनातनी ।।३६।।
भव–काले नृणां सैव, लक्ष्मीर्वृद्धि–प्रदा गृहे ।
सैवाऽभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोप– जायते ।।३७।।
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूप – गन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च, मति धर्मे गति शुभाम् ॐ ।।३८।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय–उत्तर–पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी–महात्म्ये सत्याः सन्तु । (यजमानस्य कामाः) जगदम्बार्पणमस्तु ।

।। त्रयोदशोऽध्यायः ।।

सुरथ-वैश्ययोर्वर-प्रदानम्

।। ध्यानम् ।।

ॐ बालार्क-मण्डलाभासां, चतुर्बाहुं त्रिलोचनम् ।
पाशांकुश-वराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ।।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

एतत् ते कथितं राजन्!, देवी-माहात्म्यमुत्तमम् ।
एवं प्रभावा सा देवी, ययेदं धार्यते जगत् ।।१ ।।
विद्या तथैव क्रियते, भगवद् -विष्णु - मायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च, तथैवान्ये विवेकिनः ।।२ ।।
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव, मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महा-राज !, शरणं परमेश्वरीम् ।।३ ।।
(आराधिता सैव नृणां, भोग-स्वर्गापवर्गदा ।)

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा, सुरथः स नराधिपः ।
प्रणिपत्य महा-भागं, तं ऋषिं शंसित-व्रतम् ।।४ ।।
निर्विण्णोऽति - ममत्वेन, राज्यापहरणेन च ।
जगाम सद्यस्तपसे, स च वैश्यो महा-मुने ।।५ ।।
सन्दर्शनार्थमम्बाया, नदी-पुलिन-संस्थितः ।
स च वैश्यस्तपः तेपे, देवी-सूक्तं परं जपन् ।।६ ।।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः, कृत्वा मूर्तिं मही-मयीम् ।
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः, पुष्प-धूपाग्नि-तर्पणैः ।।७ ।।

निराहारौ यताहारौ, तन्मनस्कौ समाहितौ ।

ददतुस्तौ बलिं चैव, निज-गात्रासृगुक्षितम् ।।८।।

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ।

परितुष्टा जगद्धात्री, प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ।।९।।

।। देव्युवाच ।।

यत् प्रार्थ्यते त्वया भूप !, त्वया च कुल-नन्दन !

मत्तस्तत् प्राप्यतां सर्वं, परि-तुष्टा ददामि तत् ।।१०।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्य-जन्मनि ।

अत्रैव च निजं राज्यं, हत-शत्रु-बलं बलात् ।।११।।

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं, वव्रे निर्विण्ण-मानसः ।

ममेत्यहमिति प्राज्ञः, सङ्ग-विच्युति-कारकम् ।।१२।।

।। देव्युवाच ।।

स्वल्पैरहोभिर्नृपते!, स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ।

हत्वा रिपूनस्खलितं, तव तत्र भविष्यति ।।१३।।

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य, जन्म देवाद् विवस्वतः ।

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ।।१४।।

वैश्य-वर्य! त्वया यश्च, वरोऽस्मत्तोऽभि-वाञ्छितः ।

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै, तव ज्ञानं भविष्यति ।।१५।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति दत्वा तयोर्देवी, यथाऽभिलषितं वरम् ।

बभूवाऽन्तर्हिता सद्यो, भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।।१६।।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा, सुरथः क्षत्रियर्षभः ।

सूर्याज्जन्म समासाद्य, सावर्णिर्भविता मनुः ॐ ।।१७।।

ॐ जय जय श्रीमार्कण्डेय-उत्तर-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-महात्म्ये सत्याः सन्तु । (यजमानस्य कामाः) जगदम्बाऽर्पणमस्तु ।

इसकेवाद न्यास सहीत नवार्ण मन्त्रजप पृष्ट २३ में देख के १०८ वार मंत्र जप करे। तदन्तर।।

॥ ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम् ॥

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप् छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः ।१

॥ ध्यानम् ॥

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुः शरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला ।।२

॥ देवीसूक्तम् ॥

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।१ ।।
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ।।२ ।।
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम् ।।३ ।।
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः
प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि
श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ।।४ ।।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं
देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।।५।।
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।।६।।
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो –
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ।।७।।
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वाः ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ।।८।।

प्राधानिकं रहस्यम्

विनियोग– ॐ अस्य श्रीदेव्याः प्राधानिक–रहस्यस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीमहा–काली देवता । ऐं नन्दजा शक्तिः । ह्सौं रक्त–दन्तिका बीजं । रं अग्निः तत्त्वं । श्री चण्डिका–प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि–न्यास–श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि । गायत्री–छन्दसे नमः मुखे । श्रीमहा–काली–देवतायै नमः हृदि । ऐं नन्दजा–शक्तये नमः नाभौ । ह्सौं रक्त–दन्तिका–बीजाय नमः लिङ्गे । रं अग्नि–तत्त्वाय नमः हृदि । श्री चण्डिका–प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

।। ॐ राजोवाच ।।

भगवन्! नव – तारा मे, चण्डिकायास्त्वयोदिताः ।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन्!, प्रधानं वक्तुमर्हसि ।।१।।
आराध्यं यन्मया देव्याः, स्वरूपं येन तद् द्विज! ।
विधिना ब्रूहि सकलं, यथा – वत् प्रणतस्य मे ।।२।।

।। मेधा ऋषिरुवाच ।।

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते ।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्, तवावाच्यं नराधिप! ।।३।।
सर्वस्याद्या महा – लक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।
लक्ष्यालक्ष्य–स्वरूपासा, व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ।।४।।
मातु–लिङ्गं गदां खेटं, पान–पात्रं च बिभ्रति ।
नागं लिङ्गं च योनिं च, बिभ्रति नृप! मूर्द्धनि ।।५।।

तप्त – काञ्चन – वर्णाभा, तप्त – काञ्चन–भूषणा ।
शून्यं तदखिलं स्वेंन, पूरयामास तेजसा ।।६।।
शून्यं तदखिलं लोकं, विलोक्य परमेश्वरी ।
बभार परमं रूपं, तमसा केवलेन हि ।।७।।
सा भिन्नाञ्जन – सङ्काशा, दंष्ट्राञ्चित – वरानना ।
विशाल – लोचना नारी, बभूव तनु – मध्यमा ।।८।।
खड्ग – पात्र – शिरः – खेटैरलंकृत – चतुर्भुजा ।
कबन्ध – हारं शिरसा, बिभ्राणा हि शिरः–स्रजम् ।।९।।
सा प्रोवाच महा – लक्ष्मीं, तामसी प्रमदोत्तमा ।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ।।१०।।
तां प्रोवाच महा – लक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ।
ददामि तव नामानि, यानि कर्माणि तानि ते ।।११।।
महा–माया महा–काली, महा – मारी क्षुधा तृषा ।
निद्रा तृष्णा चैक – वीरा, काल – रात्रिर्दुरत्यया ।।१२।।
इमानि तव नामानि, प्रति – पाद्यानि कर्मभिः ।
एभिः कर्माणिते ज्ञात्वा, योऽधीते सोऽश्नुतेसुखम् ।।१३।।
तामित्युक्त्वा महा – लक्ष्मीः, स्वरूपमपरं नृप !
सत्त्वाख्येनाति – शुद्धेन, गणेनेन्दु –प्रभं दधौ ।।१४।।
अक्ष–मालांकुश – धरा, वीणा – पुस्तक–धारिणी ।
सा बभूव वरा नारी, नामान्यस्यै च सा ददौ ।।१५।।
महा–विद्या महा–वाणी, भारती वाक् सरस्वती ।
आर्या ब्राह्मी काम–धेनुर्वेद – गर्भा सुरेश्वरी ।।१६।।

इत्युक्तवा ते महा–लक्ष्मीः, ससर्ज मिथुनं स्वयम् ।
हिरण्य – गर्भौ रुचिरौ, स्त्री–पुंसौ कमलासनौ ।।१८।।

ब्रह्मान् विधे विरिञ्चेति, धातरित्याह तं नरम् ।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ।।१९।।

महा – काली भारती च, मिथुने सृजतः सह ।
एतयोरपि रूपाणि, नामानि च वदामि ते ।।२०।।

नील – कण्ठं रक्त – बाहुं, श्वेताङ्गं चन्द्र–शेखरम् ।
जनयामास पुरुषं, महा – काली सितां स्त्रियम् ।।२१।।

स रुद्रः शङ्करः स्थाणुः, कपर्दी च त्रिलोचनः ।
त्रयी विद्या काम–धेनुः, सा स्त्री भाषा स्वराऽक्षरा ।।२२।।

सरस्वती स्त्रियं गौरीं, कृष्णं च पुरुषं नृप !
जनयामास नामानि, तयोरपि वदामि ते ।।२३।।

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो, वासुदेवो जनार्दनः ।
उमा गौरी सती चण्डी, सुन्दरी सुभगा शिवा ।।२४।।

एवं युवतयः सद्यः, पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तोऽनु–पश्यन्ति, नेतरेऽतद्विदो जनाः ।।२५।।

ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं, महा – लक्ष्मीर्नृप! त्रयीम् ।
रुद्राय गौरीं वरदां, वासुदेवाय च श्रियम् ।।२६।।

स्वरया सह सम्भूय, विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् ।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्य–वान् ।।२७।।

अण्ड–मध्ये प्रधानादि, कार्य–जातमभून् नृप !
महाभूतात्मकं सर्वं, जगत् स्थावर – जङ्गमम् ।।२८।।

पुपोष पालयामास, तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
सञ्जहार जगत् सर्वं, सह गौर्या महेश्वरः ।।२९।।
महा-लक्ष्मीर्महा - राज ! सर्व - सत्त्व-मयीश्वरी ।
निराकारा च साकारा, सैव नानाऽभिधान-भृत् ।।३०।।
नामान्तरैर्निरूप्यैषा, नाम्ना नान्येन केनचित् ॐ।।३१।।

।। प्राधानिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ।।

वैकृतिकं रहस्यम्

विनियोग– ॐ अस्य श्रीदेव्याः वैकृतिक–रहस्यस्य श्रीविष्णुः ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्रीमहा–लक्ष्मी देवता । ह्सौं दुर्गा बीजं। ह्रीं शाकम्भरी शक्तिः । यं वायुः तत्त्वं । श्री चण्डिका–प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि–न्यास–श्रीविष्णु–ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्–छन्दसे नमः मुखे । श्रीमहा–लक्ष्मी–देवतायै नमः हृदि । ह्सौं दुर्गा–बीजाय नमः लिङ्गे । ह्रीं शाकम्भरी–शक्तये नमः नाभौ । यं वायु–तत्त्वाय नमः हृदि । श्री चण्डिका–प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

।। ॐ मेधा ऋषिरुवाच ।।

त्रिगुणा तामसी देवी, सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा, भद्रा भगवतीर्यते ।।१।।

योग – निद्रा हरेरुक्ता, महा–काली तमो – गुणा ।
मधु – कैटभ – नाशार्थं, या तुष्टावाम्बुजासनः ।।२।।

दश–वक्त्रा दश–भुजा, दश – पादाञ्जन–प्रभा ।
विशालया राज–माना, त्रिंशल्लोचन–मालया ।।३।।

स्फुरद्–दशन–दंष्ट्रा सा, भीम–रूपाऽपि भूमिप ! ।
रूप–सौभाग्य–कान्तीनां, सा प्रतिष्ठा महा–श्रियः ।।४।।

खड्ग–बाण–गदा–शूलं, पाश–चक्र–भुशुण्डि–भृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं, निश्च्योतद्–रुधिरं दधौ ।।५।।

एषा सा वैष्णवी माया, महा – काली दुरत्यया ।
आराधिता वशी – कुर्यात्, पूजा–कर्तुश्चराचरम् ।।६।।

सर्व – देव – शरीरेभ्यो, याऽऽविर्भुताऽमित – प्रभा ।
त्रिगुणा सा महा–लक्ष्मीः, साक्षान् महिष–मर्दिनी ।।७।।
श्वेतानना नील – भुजा, सु – श्वेत–स्तन–मण्डला ।
रक्त–मध्या रक्त – पादा, नील – जङ्घोरुरुन्मदा ।।८।।
सुचित्र – जघना चित्र – माल्याम्बर – विभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्ति–रूप–सौभाग्य – शालिनी ।।९।।
अष्टादश – भुजा पूज्या, सा सहस्त्र – भुजा सती ।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते, दक्षिणाधः–कर–क्रमात् ।।१०।।
अक्ष – माला च कमलं, बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः, शङ्खो घण्टा च पाशकः ।।११।।
शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं, पान – पात्रं कमण्डलुः ।
अलंकृत – भुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ।।१२।।
सर्व – देव – मयीमीशां, महा – लक्ष्मीमिमां नृप !
पूजयेत् सर्व – लोकानां, स देवानां प्रभुर्भवेत् ।।१३।।
गौरी – देहात् समुद्भुता, या सत्त्वैक – गुणाश्रया ।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता, शुम्भासुर–निबर्हिणी ।।१४।।
दधौ चाष्ट–भुजा बाण – मुसले शूल – चक्र–भृत् ।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च, कार्मुकं वसुधाधिप ! ।।१५।।
एषा सम्पूजिता भक्त्या, सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।
निशुम्भ – मथिनी देवी, शुम्भासुर–निबर्हिणी ।।१६।।
इत्युक्तानि स्वरूपाणि, मूर्तीनां तव पार्थिव ! ।
उपासनं जगन् मातुः, पृथगासां निशामय ।।१७।।
महा–लक्ष्मीर्यदा पूजा, महा–काली सरस्वती ।

दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये, पृष्ठतो मिथुन – त्रयम् ।।१८।।
विरिञ्चः स्वरया मध्ये, रुद्रो गौर्या च दक्षिणे ।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः, पुरतो देवता–त्रयम् ।।१९।।
अष्टादश – भुजा मध्ये, वामे चास्या दशानना ।
दक्षिणेऽष्ट – भुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ।।२०।।
अष्टादश – भुजा चैषा, यदा पूज्या नराधिप ! ।
दशानना चाष्ट – भुजा, दक्षिणोत्तरयोस्तदा ।।२१।।
काल – मृत्यु च सम्पूज्यौ, सर्वारिष्ट – प्रशान्तये ।
यदा चाष्ट – भुजा पूज्या, शुम्भासुर–निबर्हिणी ।।२२।।
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्र – विनायकौ ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैः, महा–लक्ष्मीं समर्चयेत् ।।२३।।
अवतार – त्रयार्चायां, स्तोत्र – मन्त्रास्तदाश्रयाः ।
अष्टादश – भुजा चैषा, पूज्या महिष–मर्दिनी ।।२४।।
महा–लक्ष्मीर्महा – काली, सैव प्रोक्ता सरस्वती ।
ईश्वरी पुण्य – पापानां, सर्व – लोक – महेश्वरी ।।२५।।
महिषान्त – करी येन, पूजिता स जगत्–प्रभुः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं, चण्डिकां भक्त–वत्सलाम् ।।२६।।
अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्ध – पुष्पैस्तथाऽक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नाना – भक्ष्य – समन्वितैः ।।२७।।
रुधिराक्तेन बलिना, मांसेन सुरया नृप ! ।
प्रणामाचमनीयेन, चन्दनेन सुगन्धिना ।।२८।।
स – कर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्ति – भाव – समन्वितैः ।
वाम – भागेऽग्रतो देव्याश्छिन्न–शीर्ष महाऽसुरम् ।।२९।।

पूजयेन् महिषं येन, प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं, समग्रं धर्ममीश्वरम् ।।३०।।
वाहनं पूजयेद् देव्या, धृतं येन चराचरम् ।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्र-मानसः ।।३१।।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा, स्तुवीत - चरितैरिमैः ।
एकेन वा मध्यमेन, नैकेनेतरयोरिह ।।३२।।
चारितार्धं तु न जपेज्जपंश्छिद्रमवाप्नुयात् ।
प्रदक्षिणा-नमस्कारान्, कृत्वा मूर्ध्नी कृताञ्जलिः ।।३३।।
क्षमापयेज् जगद्धात्रीं, मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।
प्रति-श्लोकं च जुहुयात्, पायसं तिल-सर्पिषा ।।३४।।
जुहुयात् स्तोत्र - मन्त्रैर्वा, चण्डिकायै शुभं हविः ।
भूयो नमः - पदैर्देवीं, पूजयेत् सु-समाहितः ।।३५।।
प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः, प्राणानारोप्य चात्मनि ।
सुचिरं भावयेद् देवीं, चण्डिकां तन्मयो भवेत् ।।३६।।
एवं यः पूजयेद् भक्त्या, प्रत्यहं परमेश्वरीम् ।
भुक्त्वा भोगान् यथा-कामं, देवी-सायुज्यमाप्नुयात् ।।३७।।
यो न पूज्यते नित्यं, चण्डिकां भक्त - वत्सलाम् ।
भस्मी - कृत्यास्य पुण्यानि, निर्दहेत् परमेश्वरी ।।३८।।
तस्मात् पूजय भूपाल!, सर्व-लोक-महेश्वरीम् ।
यथोक्तेन विधानेन, चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ।।३९।।

।। वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ।।

मूर्तिरहस्यम्

विनियोग– ॐ अस्य श्रीदेव्याः मूर्ति–रहस्यस्य श्रीरुद्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्रीमहा–सरस्वती देवता । भ्रामरी बीजं । क्लीं भीमा शक्तिः । श्री चण्डिका–प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि–न्यास–श्रीरुद्र–ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्–छन्दसे नमः मुखे । श्रीमहा–सरस्वती–देवतायै नमः हृदि । भ्रामरी बीजाय नमः लिङ्गे । क्लीं भीमा–शक्तये नमः नाभौ । यं सूर्य–तत्त्वाय नमः हृदि । श्री चण्डिका–प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

॥ ॐ ऋषिरुवाच ॥

ॐ नन्दा भगवती नाम, या भविष्यति नन्दजा ।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या, वशी–कुर्याज्जगत्–त्रयम् ॥१॥
कनकोत्तम–कान्तिः सा, सु–कान्ति–कनकाम्बरा ।
देवी कनक – वर्णाभा, कनकोत्तम – भूषणा ॥२॥
कमलांकुश – पाशाब्जैरलंकृत – चतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः, सा श्रीरुक्माम्बुजाऽऽसना ॥३॥
या रक्त – दन्तिका नाम, देवी प्रोक्ता मयाऽनघ ! ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि, शृणु सर्व – भयापहम् ॥४॥
रक्ताम्बरा रक्त – वर्णा, रक्त – सर्वाङ्ग – भूषणा ।
रक्तायुधा रक्त – नेत्रा, रक्त – केशाति–भीषणा ॥५॥
रक्त–तीक्ष्ण–नखा रक्त – दशना रक्त – दन्तिका ।
पतिं नारीवानुरक्ता, देवी – भक्तं भजेज्जनम् ॥६॥

वसुधेव विशाला सा, सुमेरु – युगल – स्तनी ।
दीर्घौ लम्बावति – स्थूलौ, तावतीव मनोहरौ ।।७।।
कर्कशावति – कान्तौ तौ, सर्वानन्द – पयोनिधी ।
भक्तान् सम्पाययेद् देवी, सर्व–काम–दूधौ स्तनौ ।।८।।
खड्गं पात्रं च मुसलं, लाङ्गलं च बिभर्ति सा ।
आख्याता रक्त – चामुण्डा, देवी योगेश्वरीति च ।।९।।
अनया व्याप्तमखिलं, जगत् स्थावर – जङ्गमम् ।
इमां यः पूजयेद् भक्त्या, स व्याप्नोति चराचरम् ।।१०।।
अधीते य इमं नित्यं, रक्त–दन्त्या वपुः–स्तवम् ।
तं सा परिचरेद् देवी, पतिं प्रियमिवाङ्गना ।।११।।
शाकम्भरी नील – वर्णा, नीलोत्पल – विलोचना ।
गम्भीर – नाभिस्त्रिवली – विभूषित–तनूदरी ।।१२।।
सु–कर्कश – समोत्तुङ्ग – वृत्त –पीन – घन – स्तनी ।
मुष्टिं शिली – मुखापूर्णं, कमलं कमलालया ।।१३।।
पुष्प–पल्लव–मूलादि–फलाढ्यं शाक–सञ्चयम् ।
काम्यानन्त – रसैर्युक्तं, क्षुत्–तृण–मृत्यु–भयापहम् ।१४।।
कार्मुकं च स्फुरत्–कान्तिं, बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा, सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ।।१५।।
विशोका दुष्ट – दमनी, शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी, कालिका साऽपि पार्वती ।।१६।।
शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन् नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्न – पानामृतं फलम् ।।१७।।
भीमाऽपि नील – वर्णा सा, दंष्ट्रा–दशन–भासुरा ।
विशाल – लोचना नारी, वृत्त – पीन –पयोधरा ।।१८।।

चन्द्र – हासं च हमरुं, शिरः पात्रं च बिभ्रति ।
एक–वीरा काल रात्रिः, सैवोक्ता कामदा स्तुता ।।१९।।
तेजो–मण्डल–दुर्धर्षा, भ्रामरी चित्र–कान्ति–भृत् ।
चित्रानुलेपना देवी, चित्राभरण – भूषिता ।।२०।।
चित्र–भ्रमण – पाणिः सा, महा–मारीति गीयते ।
इत्येता मूर्तयो देव्या, याः ख्याता वसुधाधिप ! ।।२१।।
जगन्मातुश्चण्डिकायाः, कीर्तिताः काम – धेनवः ।
इदं रहस्यं परमं, न वाच्यं कस्यचित् त्वया ।।२२।।
व्याख्यानं दिव्य – मूर्तीनामभीष्ट–फल–दायकम् ।
तस्तात् सर्व – प्रयत्नेन, देवीं जप निरन्तरम् ।।२३।।
सप्त – जन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्म – हत्या – समैरपि ।
पाठ – मात्रेण मन्त्राणां, मुच्यते सर्व–किल्विषैः ।।२४।।
देव्या ध्यानं मया ख्यातं, गुह्यादगुह्य–तरं महत् ।
तस्मात् सर्व – प्रयत्नेन, सर्व–काम – फल–प्रदम् ।।२५।।

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ।।१।।
न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम् ।।२।।
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ।।३।।
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वती ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।।४।।

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चै ।। ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः
ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चै ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ।।

।। इति मन्त्रः ।।

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ।
नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ।।१।।
नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ।
जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ।।२।।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ।
क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपै नमोऽस्तु ते ।।३।।
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ।
विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ।।४।।

धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नीं वां वीं वूं वागधीश्वरी ।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु ।।५।।
हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जन्भनादिनि ।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ।।६।।
अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं
धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ।।७।।
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ।
सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ।।८।।
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे ।
अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ।।
यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् ।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ।।

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे
कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।
।। ॐ तत्सत् ।।

क्षमा -प्रार्थना

यदत्रपाठेजगदम्बिके मया, विसर्ग-विन्द्वक्षर-हीनमीरितम ।
तदस्तु सम्पूर्णं त्वयाप्रसादतः, सङ्कल्प-सिद्धिश्च सदैव जायनातम् ।।१ ।।
यन्मात्रा-विन्दु-विन्दु-द्वितय-पद-पद -द्वन्द-वर्णादि-हीनम्,
भक्त्या भक्त्यानुपूर्वं प्रवचन-वचनाद् व्यक्तमव्यक्तमम्ब ।
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं साम्प्रतं ते स्तवेऽस्मिन्,
तत्-सर्वं साङ्गमास्तां भगवति वरदे त्वत्-प्रसादात् प्रसीद ।।२ ।।
प्रसीद भगवत्यम्ब , प्रसीद भक्त-वत्सले,
प्रसादं कुरु मे देवि, नमस्ते विन्ध्यवासिनी।।३ ।।
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ।।४ ।।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ।।५ ।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।।६ ।।
अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ।।७ ।।
सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके। ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ।।८ ।।
अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ।।९ ।।
कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे ।।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ।।१०।।
गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ।।११ ।।

।। विन्ध्येश्वरी स्तोत्रम् ।।

निशुम्भशुम्भमर्दनीं, प्रचण्डमुण्डखण्डिनीम् ।
वने रणे प्रकाशिनीं, भजामी विन्ध्यवासिनीम् ।।
त्रिशूल-मुण्ड-धारिणीं धराविघात-हारिणीम् ।
गृहे-गृहे निवासिनीं भजामी विन्ध्यवासिनीम् ।।
दरिद्र दुःख हारिणीं, सतां विभूतिकारिणीम् ।
वियोगशोकहारिणीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ।।
लसत्सुलोल लोचनं लता सदा वरप्रदां ।
कपाल-शूलधारिणीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम्।।
कराब्जदानदाधरां, शिवाशिवां-प्रदायिनीम् ।
वरां वराननां शुभां, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ।।
ऋषीन्द्रजामिनीप्रदां, त्रिधास्वरूपधारिणीम् ।
जले-थले निवासिनीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ।।
विशिष्टशिष्ट-कारिणीं, विशालरूप-धारिणीम् ।
महोदरे विलासिनीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ।।
पुरन्दरादिसेवितां मुरादि वंशखण्डिनी ।
विशुद्धबुद्धिकारिणीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ।।

।। इति विन्ध्यवासिन्याष्टकम् सम्पूर्णम् ।।

।। आरती श्री विन्ध्यवासिनी की ।।

सुन मेरी देवी पर्वतवासिनि,
तेरा पार न पाया ।। टेक ।।
पान सुपारी ध्वजा नारियल,
ले तेरी भेंट चढ़ाया ।।
साड़ी चोली तेरे अंग विराजै,
केसर तिलक लगाया ।।
नंगे पैरों माता राजा दौड़ा आया,
सोना का छत्र चढ़ाया ।।
ऊँचे पर्वत बना देवालय,
नीचे शहर बसाया ।।
सतयुग त्रेता द्वापर मध्ये,
कलियुग राज सवाया ।।
धूप दीप नैवेद्य आरती,
सुमधुर भोग लयागा ।।
ध्यानू भगत मैया तेरे गुण गावैं,
मनवांछित फल पाया ।।

सप्तशती के कुछ सिद्ध सम्पुट-मन्त्र

(१) सामूहिक कल्याण के लिए –

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नता: स्म विदधातु शुभानि सा न: ।।

(२) विश्व के अशुभ तथा भय का विनाश करने के लिए—

यस्या: प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
चा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ।।

(३) विश्व की रक्षा के लिये —

या श्री: स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मी:
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धि: ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नता: स्म परिपालय देवि विश्वम् ।।

(४) विश्व के अभ्युदय के लिये—

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्रा: ।।

(५) विश्वव्यापी विपत्तियों के नाश के लिये—

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ।।

(६) *विश्व के पाप-ताप-निवारण के लिये—*

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ।।

(७) *विपत्ति-नाश के लिये—*

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

(८) *विपत्तिनाश और शुभ की प्राप्ति के लिये—*

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ।

(९) *भय-नाश के लिये—*

(क) सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।।

(ख) एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ।।

(ग) ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ।।

(१०) *पाप-नाश के लिये—*

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ।।

(११) *रोग-नाश के लिये—*

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयन्ति ।।

(१२) *महामारी-नाश के लिये—*

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ।।

(१३) *आरोग्य और सौभाग्य की प्राप्ति के लिये—*

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।

(१४) *सुलक्षणा पत्नी की प्राप्ति के लिये —*

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ।।

(१५) *बाधा-शान्ति के लिये —*

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ।।

(१६) *सर्वविध अभ्युदय के लिये—*

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यादारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ।।

(१७) *दारिद्र्यदुःखादिनाश के लिये—*

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ।।

(१८) *रक्षा पाने के लिये—*

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ।।

(१९) *समस्त विद्याओं की और समस्त स्त्रियों में मातृभाव की प्राप्ति के लिये—*

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ।।

(२०) *सब प्रकार के कल्याण के लिये—*

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

(२१) *शक्ति-प्राप्ति के लिये —*

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणामये नारायणी नमोऽस्तु ते ।।

(२२) *प्रसन्नता की प्राप्ति के लिये—*

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ।।

(२३) *विविध उपद्रवों से बचन के लिये —*

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ।।

(२४) *बाधामुक्त होकर धन-पुत्रादि की प्राप्ति के लिये—*

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ।।

(२५) *भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति के लिये—*

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।

(२६) *पापनाश तथा भक्ति की प्राप्ति के लिये—*

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।

(२७) *स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति के लिये—*

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ।।

(२८) *स्वर्ग और मुक्ति के लिये—*

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणी नमोऽस्तु ते ।।

(२९) *मोक्ष की प्राप्ति के लिये—*

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ।।

(३०) *स्वप्नमें सिद्धि-असिद्धि जानने के लिये—*

दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके ।
मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय ।।

(३१) *शुयोग्य वर प्राप्ती के लिए*

ॐ कात्यायनी महाँ माये महाँ योगिन्न धीक्ष्वरी
नन्द गोपसुते देवी पतिम्मे कुरुते नयः ।

(३२) *योग्य संतान प्राप्ति के लिए*

उमा गौरि शती चण्डी विन्देश्वरी जया शिवा
देही मे तनयं मातः, त्वामहम् शरणं गतः ।।

कामाक्षा महिमा श्रीमद्देवीभागवते।

श्रीमदत्रिपुरभैरव्या कामाक्षा योनिमण्डलम्
भूमण्डले क्षत्र रत्नं महाँ मायाधिवाशितम्
नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ती धरातले
प्रतिमासं भवेददेवी यत्रसाक्षाद्रजस्वला
तत्रत्या देवतासर्वा पर्वतात्म गातां गताः
पर्वतेषु वशन्तपि महत्यो देवतामपि
काली, तारा महाविद्या षोडशी, भुवनेश्वरी
भैरवि, छिन्नमस्ताच विद्या धूमावती तथा
वगला शिद्धविद्याच माताङ्गी, कमलात्मिका
येतादश महाविध्या पर्वतेषु प्रतिष्ठिताः
तत्रत्या पृथ्वी शर्वा देवी रुपाश्मृतावुधै
नातः पर तर स्थानं कामाक्षा योनिमण्डलात

देवीमयी

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके।
सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो
मनसिजासु बहिःप्रसरासु च।।
इति विचिन्त्य शिवे । शमिताशिवे।
जगति जातमयत्नवशदिदम्।
स्तुतिजपार्जनचिन्तनवर्जिता
न खलु काचन कालकलास्ति मे।।

श्री दुर्गा सप्तशती के साथ आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्र

सभी कामनाओं की पूर्ति एवं आपदाओं के निवारण हेतु श्रीदुर्गा सप्तशती के साथ आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्र का पाठ करने का विधान है ।

यथा पहले आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्र का पाठ करें । फिर प्रथम अध्याय से चतुर्थ अध्याय के अन्त तक पाठ करे । फिर आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तव का पाठ कर शेष ५ से १३ तक ९ अध्याय का पाठ करे । अन्त में पुनः आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्र का पाठ करे, तो सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।

आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्रतम्

भैरवो भूत-नाथश्च, भूतात्मा भूत-भावनः । क्षेत्रज्ञः क्षेत्र-पालश्च, क्षेत्रदः क्षत्रियो विराट् ॥१
श्मशान-वासी मांसाशी, खर्पराशी स्मरान्त-कृत् । रक्तपः पानपः सिद्धः, सिद्धिदः सिद्धि-सेवितः ॥२
कङ्कालः काल-शमनः, कला-काष्ठा-तनुः कविः । त्रि-नेत्रो बहु-नेत्रश्च, तथा पिङ्गल-लोचनः ॥३
शूल-पाणिः खड्ग-पाणिः, कङ्काली धूम्र-लोचनः । अभीरुर्भैरवी-नाथो, भूतपो योगिनी-पतिः ॥४॥
धनदोऽधन-हारी च, धन-वान् प्रतिभाग-वान् । नगर-हारो नाग-केशो, व्योम-केशः कपाल-भृत् ॥५
कालः कपाल-माली च, कमनीयः कलानिधिः । त्रिलोचनः ज्वलत्रेत्रस्त्रि-शिखि च त्रि-लोक-भृत् ॥६
त्रिवृत्त-तनयो डिम्भः, शान्तः शान्त-जन-प्रियः । बटुको बटु-वेषश्च, खट्वाङ्ग-वर-धारकः ॥७
भूताध्यक्षः पशु-पतिर्भिक्षुकः परिचारकः । धूर्तो दिगम्बरः शौरिर्हरिणः पाण्डु-लोचनः ॥८
प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः, शङ्कर-प्रिय-बान्धवः । अष्ट-मूर्तिर्निधीशश्च, ज्ञान-चक्षुस्तपो-मयः ॥९
अष्टाधारः षडाधारः, सर्प-युक्तः शिखि-सखः । भूधरो भूधराधीशो, भूपतिर्भू धरात्मजः ॥१०

श्री देवीजीकी आरती

जगजननी जय! जय!! (मा! जगजननी जय ! जय!!)
भयहारिणि, भवतारिणि, भवभामिनि जय! जय!! जग०
तू ही सत-चित-सुखमय शुद्ध ब्रह्मरूपा ।
सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा ।।१।। जग०
आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी ।
अमल अनन्त अगोचर अज आनँदराशी ।।२।।
अविकारी, अघहारी, अकल, कलाधारी ।
कर्त्त्री विधि, भर्त्त्री हरि, हर सँहारकारी ।।३।। जग०
तू विधिवधू, रमा, तू उमा, महामाया ।
मूल प्रकृति विद्याल तू, तू जननी, जाया ।।४।। जग०
राम, कृष्ण तू, सीता, व्रजरानी राधा ।
तू वांछाकल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा ।।५।। जग०
दश विद्या, नव दुर्गा, नानाशस्त्रकरा ।
अष्टमातृका, योगिनि, नव नव रूप धरा ।।६।। जग०
तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू ।
तू ही श्मशानविहारिणि, ताण्डवलासिनि तू ।।७।। जग०
सुर-मुनि-मोहिनि सौम्या तू शोभाऽऽधारा ।
विवसन विकट-सरूपा, प्रलयमयी धारा ।।८।। जग०
तू ही स्नेह-सुधामयी, तू अति गरलमना ।
रत्नविभूषित तू ही, तू ही अस्थि-तना ।।९।। जग०
मूलाधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धिप्रदे ।
कालातीता काली, कमला तू वरदे ।।१०।। जग०
शक्ति शक्तिधर तू ही नित्य अभेदमयी ।
भेदप्रदर्शिनि वाणी विमले! वेदत्रयी ।।११।। जग०
हम अति दीन दुखी मा! विपत-जाल घेरे ।
हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे ।।१२।। जग०
निज स्वभाववश जननी! दयादृष्टि कीजै ।
करुणा कर करुणामयी! चरण-शरण दीजै ।।१३।। जग०

***

पं. इन्द्रप्रसादजी अधिकारी

पं. इन्द्रप्रसादजी अधिकारी

।। एक व्यक्तित्व ।।

श्रद्धेय पण्डित श्री इन्द्रप्रसादजी अधिकारी का जन्म कश्यप गौत्रिय वंश में सन् १९४८ (१० दिसम्बर) में पूर्व नेपाल धनकुटा जिलान्तर्गत मुर्तिदुंगा गा. वि. अन्तर्गत कटहरे ग्राम में पिताजी स्व. पं. अम्बिकेशरजी एवं माता स्व. नर्मदा देवी के कनिष्ठ पुत्र के रूप में हुआ । इनके वृद्ध प्रपितामह स्व. पं. माधव उपाध्याय, प्रपितामह स्व. पं. ज्योतिखर उपाध्याय एवं पितामह स्व. पं. श्रीकृष्ण उपाध्याय वंश परम्परा से धर्मपरायण संस्कारयुक्त एवं मूर्धन्य विद्वान रहे। अपने पिताश्री के हि आशीर्वाद स्वरुप प्रारम्भिक शिक्षा जैसे रूद्री, चण्डी, गीता प्रभृत प्राप्त करने के पश्चात् सन १९६० में वाराणसी आ गये ।

वाराणसी में सर्वप्रथम इन्हें अपने गुरुदेव धर्म सम्राट सनातन धर्म स्तंभ ब्रह्मलीन स्वामी करपात्रीजी महाराज का सानिध्य प्राप्त हुआ । तदन्तर संतशिरोमणि ब्रह्मलीन प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी जी का भी आशीर्वाद प्राप्त हुआ । वाराणसी में 'काशी केदार महाविद्यालय' से साहित्य से मध्यमा तक अध्ययन किया । वेदान्त व ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन प्रारंभिक मुमुक्षु भवन में हुआ । हिन्दु विश्वविद्यालय में वेदान्त से मध्यमा करने के पश्चात् सन १९७१ में अपने पिताश्री की अस्वस्थता के कारण घर लौटना पड़ा । पिताश्री की आज्ञा से सन् १९७३ में कौशिक गौत्रिय स्व. पं. प्रेम प्रसादजी रेग्मी एवं स्व. दिव्येश्वरी देवी की ज्येष्ठा सुपुत्री श्रीमती भद्रकला देवी के साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ जिसके एक वर्ष पश्चात ही इनके पिताश्री का स्वर्गवास हो गया ।

पिताश्री के वार्षिक श्राद्ध सम्पन्न करने के एक वर्ष पश्चात इन्हें वैराग्य हो गया और मौन व्रत धारण करके नेपाल एवं भारतवर्ष के अनेक तीर्थ स्थलों का भ्रमण करने के पश्चात पुन: सन् १९७६ में गृहस्थ में आ गये । दो पुत्र एवं एक पुत्री का जन्म हुआ। विशेष परिस्थिति के कारण अनेक स्थानों का परिवर्तन करना पड़ा । सन् १९८५ में भारत के उत्तर पूर्वांचल स्थित कोहिमा (नागालैण्ड) में गए, वहाँ जनमानस में धार्मिक शिक्षा, जनसेवा और कोहिमा चान्दमारी स्थित श्री श्री सिंह वाहिनी प्राकृतिक विग्रह की सेवा करते हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया । वहीं सुप्रसिद्ध विद्वान श्रेष्ठ विद्यावारिधि डा. स्वामी प्रपन्नाचार्यजी के सानिध्य में २ मास पर्यन्त रहे । इनके महाग्रंथ "किरात इतिहास" में पृष्ठ संख्या १५०९ में उल्लेख भी आपके प्रति सविस्तार किया गया है । तिनसुकिया (असम) स्थिति चिउरापट्टी के कालीधाम के संस्थापक बाबा कालीदासजी दहाल से उनके सन्यास लेने से पूर्व मिलना हुआ । आपने अनेको यजमानों के सकाम अनुष्ठान करते हुए सभी में शतप्रतिशत मनोकामनाओं की पूर्ति इष्ट कृपा से करवायी है ।

ब्राह्मण समाज में तथा अनेक आपके सम्पर्क में आये हुए परिवारों में आपकी प्रतिष्ठा सर्वमान्य है ।

सन् १९९९ में आपने सर्वोच्च शक्तिपीठाधीश्वरी परम्बा भगवती कामाख्या (नील पर्वत वासिनी) की शरण में आये, यहाँ परमश्रद्धेय संतशिरोमणि श्री श्री मौनी बाबाजी कामाख्याधाम स्थित श्रीपरशुराम गुफा में बाबा का सानिध्य लाभ और आशीर्वाद प्राप्त किया। तब से निरंतर भगवती के आशीर्वाद प्राप्त हेतु दर्शनार्थ सदैव माँ के दरवार में जाते रहते हैं । यहाँ इनके द्वारा दिये गये अनुष्ठानों से अनेको लोगों का कल्याण होता रहा है । आपका जीवन उदाहरण है कर्मठता, परोपकारिता व संस्कारों का एवं संस्कारित समर्पित लगनशीलता का । आपको अपने इष्ट पर सम्पूर्ण दृढ़ विश्वास है अतएव आपके सभी अनुष्ठान सदैव सफल होते हैं ।

परमेश्वरलाल नागौरी